बंसरी

कमल शुक्ल

अनुपम प्रकाशन
नई मंडी, मुज़फ्फ़रनगर

१९६३
1963

प्रथम संस्करण

मूल्य
तीन रुपये
3/-

प्रकाशक
राजेश गोयल
अनुपम प्रकाशन
१०० सी, नई मंडी
मुजफ्फरनगर (उ० प्र०)

मुद्रक
युगान्तर प्रेस, मुज़फ्फ़रनगर।

Bansari By:— Kamal Shukla

—आस्तिकवाद की ओर—

बंसरी एक भाव पूर्ण कथा चित्र है जिसमें आस्था अपने अस्तित्व का चोर ओढ़ मान्यताओं की माँग में मर्यादा का सिंदूर भरता है और कहती है कढ़ियों से कि परम्परा कभी पुरानी नहीं होती जैसी दुनिया रोज—रोज नयी लगती है। बंसरी उच्चादर्श की लड़की है। वह आजीवन कौमार्य व्रत का पालन करने का दृढ़ संकल्प करती है। लेकिन जींवन की डगर के मध्यस्थल में भावनायें उसे गुदगुदाती हैं। उसकी जिन्दगी कल्पना के साथ आँख–मिचौनी खेलती। उसके मन में बनता आशा का महल जिसमें भावी की रंग बिरंगी कोयल बोलती। बसंत उसे दृष्टिगोचर होता; किन्तु मोड़, मोड़ उसे कहीं वे ले जाकर कहीं पटक देता।

तभी तो भावना की पराजय होती। मानवगत कर्त्तव्य ललकार उठता और उत्कृष्ठ प्रेरणा के खुलते श्रोत जिनमें सादगी का नीर बहता और बंसरी उसी में डुबकी लगा, अपना जीवन पथ तय करने एक अनिश्चित दिश- की ओर चल देती।

यह भाव–प्रधान कथाकृति है। त्याग, आदर्श और यथार्थ इसमें तीनों की त्रिवेणी लहराती है। और बंसरी वह पथ स्पष्ट करती है जिसपर सहज–ही चला जा सकता है भावनाओं की करिधारा में बहकर नहीं, मुस्कराकर, हंसकर।

एम० ब्लाक ५७,
किदवई नगर, कानपुर।

—कमल शुक्ल

१

वैभव बिखर रहा था लखनऊ महानगरी के प्रांगण में। हज़रत गंज में रात अपनी पूर्ण यौवनावस्था को प्राप्त हो शीशे-सी चमक रही थी। वह इठला रही थी शशि की भांति जब उसका प्रतिबिम्ब जल में अठखेलियाँ करता ठीक वैसे ही। तारकोल की काली सड़क बिजली के प्रकाश में इस्पात सी चमचमा रही थी। उस पर रपटती हुई मोटरें अत्यन्त सावधानी के साथ आगे बढ़ रही थीं। बंसरी अपनी ज्वैलरी की दूकान से उठकर कार में आकर बैठी और डालीगंज चल दी।

यहाँ पर था सौरन–प्रेस जिसमें बंसरी के पिता राजनारायण के पहले तो कुछ शेयर थे, फिर सारे शेयर खरीदकर वे प्रेस के सर्वेसर्वो बन गये। कार प्रेस के फाटक पर रुक गई और बंसरी ने नीचे उतर कर आगे बढ़ने का आयोजन किया ही था कि साधारण वेश–भूषा का एक आदमी उसके सामने आकर खड़ा हो गया। उसने दोनों हाथ बाँध, शिष्टाचार का प्रदर्शन कर, अतीव दीन स्वर में निवेदन किया—"क्षमा करें, मुझे काम चाहिये। सुना है आपके प्रेस में एक क्लर्क की जगह खाली है। इसी आशा पर दौड़ा आया हूं। मैं............"

"तो तुम आफिस में बात कर लो, मुझे काम है।" बंसरी को उस आगन्तुक की बात बोझिल-सी लग रही थी। वह बहुत व्यस्त थी इसीलिये शीघ्रता के स्थान पर रोड़ा अटकता देख ऊब कर उस व्यक्ति की बात काट दी!

लेकिन नारी का दुर्बल मन पश्चाताप से शीघ्र–ही भर जाता है। बंसरी उदार हृदय थी। उसके उठे हुये पैर ठिठके और फिर धरती पर चिपक कर रह गये। उसे ऐसी अनुभूति होने लगी मानों जान बूझकर उसने कोई बहुत बड़ा पाप कमा डाला हो। पीछे दृष्टि

फेरकर निराश नौकरी पाने वाले व्यक्ति को चिन्तनावस्था में खड़ा देख उसके मुँह से धीरे से निकल गया—"जाओ न, दफ्तर में चले जाओ ।"

युवक निःशब्द रहा । बंसरी उसकी ओर निहारती रही और चौकीदारी मन-ही-मन ईर्ष्या में जलने लगा कि बेकार आवारा आदमी अब क्लर्की की जगह जरूरत पा जायेगा । मुकद्दर ऐसा होता है । दफ्तर में जाकर वह लौट आया था । फिर दो घन्टे तक यहाँ जमा रहा । मेरे लाख उखाड़ने पर भी नहीं उखड़ा । बंसरी का दिल पसीज गया है, अब वह बाबू ज़रूर बन जायेगा । एक रहा मैं जो जिन्दगी भर चोकीदारी- ही करता रहा ।

बंसरी और युवक कुछ देर तक मौन रहे । बंसरी ने देखा साँवले रंग का मध्यम क़द और चौड़े सीने वाला युवक अपने उतरे हुए चेहरे पर निराशा का भाव लिये खड़ा है । पैरों के चप्पल धूल-धूसरित होने के साथ-ही साथ टूटे हुए थे और ढ़ीली मोहरी के श्वेत पायजामें की मोहरियाँ फट गयी थीं । जिससे चीथड़ों की डोरियाँ जमीन बटोरते बटोरते मैली हो चली थी । नीली हाफ़ कमीज भी यत्र- तत्र मसक रही थी । और दाढ़ी ऐसी बढ़ रही थी जैसे वर्षा की घास । उसने अपने पर्स से कार्ड निकाल कर आगन्तुक की ओर बढ़ाते हुये मृदु स्वर में कहा- "लो, यह कार्ड है । सवेरे कोठी प आ जाना ।"

युवक नमस्कार कर पुलकता हुआ चला गया । और बंसरी आगे बढ़ गयी ।

× × ×

अषाढ़ की बादलों की भरी रात धूप छाँह खेल रही थीं । चाँद जैसे-ही हँसकर धरती पर उपहास करने का प्रयास करता वैसे-ही स्वयं अपनी उपेक्षित भावना से लज्जित हो श्याम घनों में मुँह छिपा लेता ।

बादल दौड़ रहे थे- काले, लाल, भूरे, पीले और सफेद। मस्त पवन शीतल पुरवाई बन मन्न-मन्द हिचकोले ले पेंगे भर रहा था। झींगुर आज दिन में हुई अषाढ़ की पहली बरसात पर मुग्ध हो अपना राग आलाप रहे थे और उनकी संगिनी झींगरी झनकार भरी अपनी शहनाई पर उनके स्वरों को मिला रही थीं। बंसरी खुली छत पर मच्छरदानी में पड़ी शून्य की ओर देख रही थी। सेवक-सेविकायें नीचे सोये थे और ड्योढ़ी पर बैठा दरबान भी बैठे-ही-बैठे ऊँघ गया था। महल सो रहा था और साम्राज्ञ जाग रही थी। उसका वैभव उसके हृदय को चकोट रहा था। दासत्व की भावना से उसे तनिक भी लगाव नहीं था; लेकिन फर भी वह स्वामिनी थी। उसके प्रति उसका उत्तरदायित्व-ही उसका प्रधान कर्त्तव्य था। उसने सदैव ही कर्त्तव्य को भावना से ऊँचा पाया था। इसलिये किसी भी कर्मचारी को भृत्य न समझ कर, वह अपना सहयोग समझती थी। रात को प्रेस में आये फटे हाल युवक का चित्र उसकी आँखों के सामने घूम रहा था। वह किसी का दिल दुखाना नहीं चाहती थी। वह मोंम की पुतली थी इसलिये आग तथा आँच से बचने के लिये शीतल छाया में रहने की अभ्यस्त हो गयी थी। एकान्त में शान्ति थी और शांन्ति में सन्तोष था। यही उसकी तृप्ति थी। तभी वैभव उसे बोझ- सा प्रतीत होता था।

सम्पूर्ण आकाश मेघाच्छन्न हो गया था। अब बड़ी-बड़ी बूँदें एक रोह के साथ छत पर आकर पडपड़ाने लगी। वायु के झूले पर खड़ी पुरवाई लम्बे-लम्बे झूँक झकार झूमने लगी;- किन्तु बंसरी लेटी रही। वह इतनी बेसुध थी कि उठने की आवश्यकता ही नहीं समझी। उसके मस्तिष्क में बार-बार यह प्रश्न टकरा रहा था कि वह बेचारा भी बेकारी और भुखमरी का शिकार होगा। इसके भी परिवार होगा और नन्हें मुन्ने बच्चे। उसी उत्तरदायित्व की गठरी लेकर वह मेरे पास आया था। मैं उसे निराश नहीं करूँगी। क्या पता यह वैभव

कब विलीन हो जाय ?। चल और अचल दोनों सम्पत्तियाँ मनुष्य को एक दिन ऐसे छोड़ देती है जैसे पत्ते की डाल। संसार में जिसने परोपकार को न पहचाना उसका जीवन व्यर्थ है। मैं जानती हूं कि ज्वैलरी की दूकान और प्रेस दोनों में मैंने आवश्यकता से अधिक कर्मचारी भर रक्खे हैं। इससे पुराने मुनीम और मैनेजर के मुँह लटके रहते हैं; लेकिन मैं अपने स्वभाव से विवश हूं। मुझसे किसी का दुख देखा नहीं जाता। नेकी कर और कुए में डाल, यह फकीरों की वाणी है। मुझे पुरातन और संस्कृति इस बात के लिये विवश करती है कि एक ध्येय लेकर जियो। मैं मर्यादा से मुँह नही मोड़ सकती। प्रेस के मैनेजर का जहाँ तनिक मुँह लटका है, वहाँ और लटक जाय। मैं उस पीड़ित युवक को काम ज़रूर दूँगी।

ऐसे ही सोचते-सोचते पता नहीं कब बंसरी की आँख लग गयी और प्रातः जब वह चाय पर बैठी। तभी सिल्क के सूट में लिपटा हुआ विपिन उसके सम्मुख आसीन हो गया। उसने उपेक्षा पूर्वक नींची निगाह से उसकी ओर देखा। फिर केक-पेस्ट्री और चाय का कप उसकी ओर बढ़ाती हुई अन्तः उपेक्षित और वाह्य शिष्ट शब्दों में बोली-"लीजिये।"

मगर विपिन ने उसका अनुग्रह स्वीकार नहीं किया। वह एक टक उसके झुके हुये और अत्यन्त शीघ्रता लिये हुए भाव की परखता रहा। उसने देखा कि बंसरी के खुले हुए का - घुँघराले- केश पीठ पर झूल रहे थे। सुरमई जार्जेट की साड़ी में मुँदा हुआ उसका गोरा शरीर वरवस ही विपिन को अपनी ओर आकृष्ट कर रहा था। कानों में दो हीरे कुण्डल सदृश्य विद्यमान थे ओर बाँये हाथ की एक उँगली में पड़ी थी नीलम जड़ी अंगूठी। हल्का- फुल्का- सा एक स्वर्ण हार उसके गले में लटक रहा था, जिसके मध्य में झूल रहा था एक बड़ा- सा पोखराज विपिन को स्वयं अपने पर घृणा हो आयी और एक लम्बी निःश्वास

उसके मुँह से निकल पड़ी। वह था गोरा- चिट्टा युवक वनिष्ठ भुजाओं वाला और धनाढ्य बाप का बेटा। वह सोचने लगा कि मुझमें व्यक्तित्व है; लेकिन बंसरी के सम्मुख उसका अस्तित्व कुछ भी नहीं। वह मुझसे घृणा करती है, पता नहीं क्यों? वह एकटक देखता रहा और देर होते देख बंसरी ने ऊपर दृष्टि उठायी। उसने पुनः शिष्टाचार का प्रदर्शन किया। वह बोली– "लीजिये! चाय ठन्डी हो रही है!"

अब विपिन की दृष्टि सीलिंग- फैन पर जा अटकी थी। वह चौंक कर बंसरी की ओर देखने लगा। फिर तत्क्षण ही दृष्टि नीची कर चाय का प्याला और पेस्ट्री की प्लेट हाथ में लेकर सामने रखली।

कमरा अंग्रेजी ढ़ंग से न सजा कर पुरातन संस्कृति स्वरूप सजाया गया था। उसकी छत पर सादगी थी; जिसमें झाड़, फानूस और शीशे के बड़े- बड़े कुमकुमें लटक रहे थे। दीवालों पर भगवान बुद्ध, महात्मा गाँधी, सावित्री-सत्यवान और नल-दमयन्ती आदि के तैल चित्र टँगे थे। और ऐसे ही फर्श पर बिछा था एक बेश- कीमती ईरानी कालीन। जहाँ एक ओर मेज-कुर्सी, सोफासेट आदि थे, वहाँ एक छोटी सी चाँदनी भी कोने में बिछी थी। जिस पर गाव-तकिये रक्खे थे। बंसरी के पिता राजनारायण धनी-मानी होते हुये भी अंग्रेजियत को नहीं अपना पाये थे। यह गौरव की बात थी। खिड़कियों और दरवाजों पर साटन के हरे रंग के पर्दे थे। कहीं भी प्लास्टिक और पैराशूट का नाम न था।

चाय चलती रही और बूढ़ी महराजिन दोपहर के भोजन की तालिका लेकर चली गई। अब साहस कर विपिन ने धीरे-धीरे बंसरी से प्रश्न किया– "क्या बात है बंसरी? ऐसा लगता है कि मेरे आने से तुम उदासी में डूब जाती हो। मैं भी नहीं चाहता कि अकारण आकर तुम्हें दुखाऊँ। एक बात पूँछू बताओगी? "क्या?" बंसरी ने इस

प्रकार पूछा जैसे वह बिलकुल अनभिज्ञ हो।

विपिन समझ गया कि बंसरी जान बूझकर अनजान बन रही है। उसने कहा– "पिताजी को जो जवाब तुमने दिया है वह कहाँ तक उचित है? मुझे तुमसे हमदर्दी है। इसलिये तुम्हारे सम्पक में बँधना चाहता हूँ। स्वार्थ की बात कभी मेरे मन में नहीं आयी। मैं स्वयं सिविल-सार्जन का पुत्र हूं। हजारों और लाखों से खेल सकता हूं।दस्तूर तो यह होता है कि जब व्याह-प्रस्ताव एक बार स्वीकृत हो जाय, फिर उसमें अस्वीकार के लिये रून्धि नहीं रह जाती है। तुमने पिताजी से कहा कि मैंने यह निश्चय कर लिया है कि अब व्याह नहीं करुँगी। भला कहीं नारी जाती के लिये यह सम्भव है? सोंचों तो, इतनी लम्बी उम्र तुम एकाकी रह कर कैसे काट सकोंगी? तुम्हें सहयोग के लिये हाथ फैलाना ही पड़ेगा। तुम ·· ।"

मैंने बहुत कुछ सोच लिया है विपिन और जीवन-भर सोंचती ही रहूँगी। अवस्था के साथ अनुभव बढ़ता है और विचारों में बल आ-जाता है। तुम जानते हो मेरे सिर पर कितनी बड़ी जिम्मेदारी है? इस पर मैं भी विचार करती हूँ तो यही निष्कर्ष निकलता है कि बन्धन बुरा है। मैं किसी भी बन्धन में नहीं बँधना चाहती। मुझे क्षमा करो। इस प्रसंग को मैं सुनना भी नहीं चाहती हूँ।" यह कहने के साथ ही बंसरी ने चाय का प्याला प्लेट में रख दिया और उठकर रेडियो खोलने चल दी।

विपिन उसके आशय को समझ गया। उसने चाय समाप्त कर उठने का आयोजन करते हुये कुछ चिढ़े हुए स्वर में कहा— "अच्छा, तो मैं अब चलता हूँ।"

"अच्छा।" कहकर बंसरी ने जबरदस्ती हंसने का प्रयत्न किया; लेकिन वह विफल ही रही। इससे विपिन का कुण्ठित-भाव और बढ़ गया। वह क्रोध में भरा हुआ कमरे से बाहर निकल गया।

बंसरी ने रेडियो नहीं खोला। वह चाँदनी पर आकर गाव-तकिया का सहारा ले अध-लेटी अवस्था में पड़ रही। उसके मस्तिष्क में विचार उत्पन्न हो गया था, जिससे मानस-जगत की समस्त शिरायें फटने लगी थीं। धमनियों में रक्त तेजी से दौड़ने के कारण उसकी साँस फूल कर गर्म हो उठी थी। वह बैठी न रह सकी। आदम कद शीशे के सामने जा अपनी आकृति निहारने लगी। उसे ऐसा लगा कि उसका मानवीय रूप शीशे में है और लौकिक साथ बँधा है। वह सोचने लगी कि विपिन डाक्टरी पढ़ रहा है। एक दिन वह भी सर्जन बनेगा। मेरे पिता उसके साथ मेरा ब्याह पक्का कर गये हैं। यदि उनकी आज्ञा का पालन करती हूँ तो कर्त्तव्य नहीं निभा पाऊँगी। मुझे स्वयं शासन में रहना होगा पुरुष के प्रतिबन्ध स्त्री के लिये अनिवार्य हैं। मैं लकीर की फकीर नहीं बनना चाहती। विपिन नयी रोशनी का युवक है। वैभव में विलास को पाकर वह अपने साथ ही मुझे भी गुमराह कर देगा। अभी तो मैंने यही निश्चय कर रखा है कि आजीवन ब्याह नहीं करूँगी हाँ, यदि कोई उपयुक्त जीवन साथी दैवी वरनान- स्वरूप मिल गया तो पिता जी के लगाये हुये बाग में अमृत छिड़क कर उन्हें जीवित रख सके, तो उसके साथ मेरा गठबन्धन हो सकता है। मैं नहीं चाहती कि जानबूझ कर कुएँ में कूदूँ। विपिन आज के संसार का रंगीला युवक है और मुझे सादगी पसन्द है। जब मन का मेल नहीं मिल सकता तो फिर उसके साथ ब्याह कैसे सम्भव हो सकता है? पिताजी जीवित थे तब बात और थी। तब किसी के हाथों में मुझे सौंपने का अधिकार उन्हें था। लेकिन अब मैं स्वयं अपने भले-बुरे की जिम्मेदार हूँ। मैं कोई भी ऐसा काम नहीं करना चाहती हूं जिससे कुल की प्रतिष्ठा को बट्टा लगे। जो सुख सरलता और सादगी में है वह वैभव और विलास में कहां। मैं कुछ भी नहीं कह सकती कि भविष्य में क्या होगा? इतना अवश्य जानती हूँ कि मेरा संकल्प दृढ़ है। उसमें कोई भी विघ्न और व्याघात बाधा नहीं उत्पन्न कर सकते।

बंसरी अब शीशे के सामने खड़ी न रह सकी। वह धीरे से कौच पर जाकर लेट रही। तभी दरबान डाक लाकर मेज पर रख या।

२

माँ–बाप का साया वंसरी के सिर पर से ऐसा उठ गया था जैसे धूप से तपे हुये पानी के सिर पर से पेड़ की छाया। भूचाल आया और पेड़ की जड़े चटचटाकर टूट गई। यात्री व्याकुल हो उठा। उसका अन्तर पत्ते की तरह काँप उठा और-वह गिरता–पड़ता सुदूर क्षितिज की छाया की ओर बढ़ने लगा। दैव-दुर्विपाक ने वंसरी के पिता पंड़ित राज नारायण को प्रौढावस्था में ही उठा लिया था। कार दुर्घटना में उनकी मृत्यु हुई और उसके थोड़े दिन बाद ही शोक में उनकी गृहणी भी चल बसी। अब वह अकेली रह गई थी।

वंसरी के पिता बैंकर्स, ज्वैलर्स और प्रेस के मालिक थे। कैसरबाग में उनकी एक विशाल गगनचुम्बी कोठी थी। इकलौती बंसरी के अतिरिक्त उनके परिवार में अन्य कोई न था। अठारह वर्ष की आयु में उसने बी० ए० की परीक्षा पास कर ली थी और एम० ए० में पदार्पण करते ही उस पर बज्रपात हो गया। वह उत्तर-दर्शयत्व की मजबूत जंजीरों में जकड़ गई। इस लिये अपना हास-परिहास, दुःख सुख और हानि-लाभ सब कुछ भूल गई थी। वह प्रातः और सायं हजरतगंज में अपनी ज्वैलरी की दूकान पर जाकर देखभाल करती और ऐसे ही डालीगंज में स्थिति सौरभ प्रेस में भी, दिन में दो बार जाने का उसका नियम बन गया था।

वंसरी का स्वभाव बड़ा मृदुल था। वह बहुत कम बोलती थी; किन्तु जब बोलती तो ऐसा लगता कि उसके मुह से मधु टपक रहा है। प्रायः वह गम्भीर ही रहती थी। उसके सम्मुख दिन-रात एक, यह ही समस्या उपस्थित रहती थी कि विपिन से सम्बन्ध

विच्छेद किस प्रकार किया जाय ? यों तो उसने यह निश्चय कर रखा था कि वह उसके साथ ब्याह नहीं करेगी। मन में इसी अन्तर्द्वन्द को लेकर बैठी थी वह। सामने मेज़ पर चिट्ठियाँ पड़ी थी। जिनको शायद पढ़ कर उसने उपेक्षापूर्वक डाल दिया था ड्योढ़ी पर एक युवक आया और दरवान कार्ड लेकर उसके सामने आ खड़ा हो गया।

"उसको यहाँ भेज दो।"

बंसरी के मुँह से इतना सुनते ही दरवान प्रत्यावर्तन में उस युवक को लेकर पल-मात्र में ही वहाँ उपस्थित हो गया।

"तुम जाओ।"

दरवान चला गया और बंसरी ने उस आपरिचित की ओर देखकर सहानुभूतिपूर्ण शब्दो में प्रश्न किया—"इसके पहले कहाँ काम करते थे ?"

"कहीं भी पैर टिकने नहीं पाये और पंजों का सहारा लेकर इन्सान भला कब तक खड़ा रह सकता है। आज यहाँ कल वहाँ वाली परिस्थिति मुझे कठपुतली की भाँति नचाती रही और मैं नाचता रहा।" कहते-कहते युवक का मुख उदासी में डूब गया और स्वर-आर्न्द हो गया।

बंसरी चौंकी; अब वह आँखें फाड़-फाड़ कर युवक को देख रही थी। कल रात वाले कपड़े ही उसके तन पर थे और वैसी ही आकुलता तथा परेशानी चेहरे पर। उसने कौतूहलवश पूछ दिया —"क्या योग्यता है तुम्हारी ? और ------ ?"

बंसरी कहते-कहते ठनक गयी। आगे बोलने के लिये उसको शब्द ही नहीं मिले। और युवक कहने लगा—"गणित में एम० ए० किया था, लेकिन इसकी डिगरी मेरे काम नहीं आयी। पाँच साल से भटक रहा हूं।"

बंसरी पूर्णतया प्रभावित हो उठी। वह अतीव मृदुस्वर में उसकी ओर प्रसन्न दृष्टि डालकर बोली—"खड़े क्यों हो? बैठो न।"

और जब युवक बैठ गया, तो उसने पूछा—"एकाउन्ट का काम जानते हो?"

"हाथ कंगन को आरसी क्या है। मैं ट्रायल यहीं दे दूँ?" युवक को एक बहुत बड़ा बल-सा मिल गया था। उसे आशा हो गयी थी कि नौकरी मिल जायेगी।

× × × ×

उस युवक का नाम था बसन्त। जाति का ब्राह्मण और परिवार-हीन था वह। रहने वाला जिला आरा का था। ऐसा ही कुछ प्रेस में उससे जिसने पूछा उसने उसको बताया था। बंसरी भी उसके इस परिचय से पूर्णतया विज्ञ हो चुकी थी। एक बात यह भी थी कि ज्वैलरी की दुकान और प्रेस में जितने भी कर्मचारी थे वह सबसे घर जैसा व्यवहार करती थी उनके दुख-सुख का पता लगाये रहती थी। न जाने इतनी उदारता और अपनत्व उसमें कहाँ से आ गया था। दुबली–पतली देह और लम्बे-कद वाली बंसरी की आँखें हिरणी जैसी थी। और गोरी तो वह इतनी थी, उसके सम्मुख चाँद भी लजाता था। वह सुन्दरता व्यर्थ

हो जाती है जिसमें मस्तिष्क मृत-प्राय-सा पड़ा रहता है, लेकिन बंसरी के विवेक और बुद्धि ने उसकी सुन्दरता में चार चाँद लगा दिये थे। उसमें सहन करने की क्षमता थी और थी मनन करने की शक्ति। क्रोध के नाम पर उसे हँसी आती थी और यदि कभी वह हँसी कटु कड़ुवी लगी तो अमृत सदृश उसको पी जाती थी। दूसरे दिन प्रेस में निरीक्षण करते समय वह बसन्त की मेज के पास पहुँची और हँस कर पूछने लगी—"कहो सब ठीक है ?"

बसन्त ने डायर दृष्टि उठाई, बंसरी खड़ी मुस्करा रही थी वह संकोचवश उठकर खड़ा हो गया और सकुचाता हुआ धीरे से बोला—"सब आपकी कृपा है।"

बंसरी अपनी प्रशंसा सुनने की तनिक भी कायल नहीं थी। वह कुछ अप्रतिभ होकर बोली—"कृपा भगवान की होती है मालिक नहीं है।"

इसके बाद वह फिर हँसी और सहानुभूति भी स्वर से पूछा —"यहाँ कहाँ रहते हो ?"

"कही कोई ठीक-ठिकाना नहीं।"

बंसत की इस बात पर बंसरी को सन्तोष नहीं हुआ। वह वह तत्क्षण ही कहने लगी—"आखिर फिर भी कहाँ टिके हो अभी ?"

अब बसन्त निःसंकोच होकर कहने लगा—"रात कभी फुट-पाथ और कभी किसी पार्क में कट जाती है। दिन काम करने और घूमने फिरने में बीत जाता है। और आज कल तो पैसे के बिना कोई धर्मशाला में भी घुसने नहीं देता। क्या·········?"

"तो इस तरह तुम्हें तकलीफ उठाने की जरुरत नहीं। मेरी

कोठी में एक सर्वेन्ट क्वाटर खाली है, आज से वहीं रहो।"

बंसरी के मुँह से इतना सुनते–ही बसन्त गद्-गद् हो उठा। वह उसके उत्थान के भार से झुकता हुआ विनीत स्वर में बोला —"बड़ी मेहरबानी है आपकी। आप ·······।"

"तुम व्यर्थ की प्रशंसा करने के आदि मालूम होते है। दाता ईश्वर हैं। हमें उसको कभी नही भूलना चाहिये।" इतना कह कर बंसरी चलने को उद्यत हुई और जाते-जाते कहती गयी— "तो आज शाम को आकर अपना कमरा खुलवा लेना।"

क्लर्क वर्ग ईर्ष्यालु दृष्टि से बसन्त की ओर देख रहा था। और वह बंसरी की महानता पर मुग्ध हो उसके उठते हुये कदमों को निहार रहा था।

× × × ×

जब बसन्त कोठी में रहने लगा तो बंसरी ने उसकी खान-पान सम्बन्धी सारी व्यवस्था वहाँ करवा दी। प्रातः और सायं वह सभी नौकरों के कमरों में चक्कर लगाती कि कहीं किसी को कोई कष्ट तो नहीं। अपने इस पर्यटन काल में उसने बसन्त को कुछ विचित्र-सा पाया। वह कभी खाना बनाता और कभी भूखा–हीं पड़ा रहता। बाजारू चीजें खाने की उसकी बिल्कुल आदत नहीं थी। यह बेसटी ने धीरे-धीरे पढ़ लिया था। कछुआ सत्य भी कहने में अच्छा लगता है; लेकिन झूठ बात कहने वाले के चेहरे का रंग-ही बदल जाता है। बंसरी ठहरी मानव-मनो विज्ञान की पूर्ण पंडिता। इसलिये वह बंसन्त के तथ्य को बिना बताये समझ जाती थी। लेकिन अभी वह चुप थी, उसकी गति-विधि के अध्ययन

में। और क्या सामने आता है? यह जिज्ञासा ही उसे जान-बूझ कर अनजान बनने के लिये प्रेरित कर रही थी।

बंसरी अक्सर सोचा करती कि प्रत्येक मनुष्य के जीवन में उसका अपना एक ऐसा गोपनीय राज़ होता है जो सब पर नहीं खुलपाता है। भावनाओं के महल तो मस्तिष्क की आँधी में ढ़हकर बोल के रूप में मुँह से टुकड़े-टुकड़े होकर गिर पड़ते हैं; लेकिन अन्तर्वेदना की चिंगारी भीतर-ही-भीतर व्यक्ति को सुलगाती रहती है। बसन्त अकेले में कुछ अशान्त और हैरान-सा रहता है। ऐसा लगता है कि एकाकीपन में उसके मुँह पर हँसी की रेखा कभी दौड़ती ही नहीं। किन्तु मुझे अपने पर विश्वास है कि एक दिन उसकी उदासी का कारण जानकर ही रहूँगी। क्या आरम्भ से ही भाग्य पर शनि की दृष्टि पड़ गयी थी, जो अबतक दुख की नदियाँ तो वेग के साथ बह रही है; मगर सुख गूलर का फूल बना हुआ है। मनुष्य सुखी क्यों नहीं है। शायद सभी अपने में अपूर्ण है, अतृप्त हैं। बसन्त भी तो मानवीय सांसारिक परम्परा में बँधा है। फिर भला वह इससे पृथक कैसे रह सकता है?

३

विपिन की गणना उन व्यक्तियों में थी जो उत्तरदायित्व से कोसों दूर होते हैं और हीरों का हार पहन कर जन्म लेते हैं। ऐसे व्यक्ति राग रंग, आनन्द और किलोलों के अभ्यस्त बन जाते हैं। और जब उनके सम्मुख न तो अपना कोई निश्चित ध्येय होता है और न कोई मुख्य कर्त्तव्य, तो उन्हें दुनिया भर की शरारतें सूझती हैं। भ्रष्टाचार उनके मनोरंजन का एक मात्र साधन होता है। जिससे उठती उमर वाले दिन-रात यही सोच-सोचकर थकते रहते हैं कि कोई शौक ऐसा तो नही रह गया है जिसे मैंने पूरा न किया हो। पैसा तो पानी है। उसे बहाकर जिन्दगी के सभी सुख लूटे जा सकते हैं। इस तरह यह वर्ग पैसे का दुरुपयोग करता है और स्वतन्त्रता के साथ कुठाराघात। प्रौढ़, और अनुभवी मनचले भ्रष्टाचार के बाजार में अपनी बुद्धि का व्यापार-करते हैं! और इस प्रकार जरायम से वे धन अर्जित करते हैं। मगर विपिन को अभी धन कमाना नही आता था। हाँ, गँवाने की कला में वह पूर्णतया पारंगत हो चुका था। और होता भी क्यों न; वह एक सिविल-सर्जन का लड़का था और उस पर भी इकलौता। बाप की फीस बँगले पर सोलह रुपये थी और बीमार के घर जाने पर बत्तीस रुपये। यही कारण था विपिन की जेबें खचाखच भरी रहती। बी० एस० सी० करने के बाद लखनऊ-मेडिकल-कालेज में ही एम० बी० बी० एस० कर रहा था। कार के नीचे उसका पैर नहीं उतरता और बँगले से बाहर निकलने पर एक मिनट के लिये भी सिगरेट मुँह से नहीं छूटती। तभी तो बंसरी को उससे घृणा हो गयी।

बंसरी का यह अनुभव अब उसका विश्वास बन चुका था कि रंगीनियों में फँसा हुआ मानव मनुष्य नहीं, एक कीड़ा होता हैं और

कीड़ों की आयु बहुत ही थोड़ी होती है। चाँदनी पूर्णिमा की रात में ही राका कही जाती है। उसके बाद केवल कोरी दूधिया चन्द्रिका ही रह जाती है वह। उसका कुछ भी अस्तित्व नहीं होता। कुछ बनाने के लिये बहुत कुछ खोना पड़ता है। विपिन एक ऐसा ऊँट है जो कभी पहाड़ के नीचे गया हीं नहीं। उसके लिये सभी धान बाइस पसेरी हैं। वैभव में विलास ही क्यों जागता है? विराग क्यों नहीं पनपता? विलास का अन्त यदि विराग में हो तो अब भी नारियो में मीरा और पुरुषों में तुलसीदास की सृष्टि हो सकती है। लेकिन मदान्ध मानव जीवन की शराब पीकर स्वयं कुबेर बन, अपनी निधि को लुटाता रहता है। उसे यह बोध ही नहीं होता कि यह खज़ाना कभी खाली भी होगा। खजाना खाली होते ही विलासी कीड़ा मर जाता है और वैभव अस्तित्वहीन हो जाता है। जिन्दा रहता है केवल मनुष्य, जो युग बीत जाने पर भी नहीं मरता। महात्मा गौतम बुद्ध अमर हैं, इसलिए कुमार सिद्धार्थ का महत्व है।

वंसरी ऐसे ही जब विपिन के प्रति सोचती तो घन्टो विचारों में खोई रहती। पता नहीं प्रत्येक के लिये उसे इतनी चिन्ता क्यों रहती। शायद वह सुमार्ग की एक पथ-प्रदर्शिका थी और वह कला उसने अपने अनुभयों और जन्मजात संस्कारों से सीखी थी। एक दिन विपिन उससे मिलने आया और वही पुराना पचड़ा छेड़कर उसको प्रसन्न करने के लिये बोला—"कहीं तुम सन्यासिनी न बन जाओ बंसरी मुझे यह भय है; क्योंकि तुम संसार को अपने अनुकूल बनाकर रखना चाहती हो। भला कहीं हवा भी मुट्ठी में बन्द की जा सकती है? इसलिये यह आवश्यक है कि थोड़ा-सा मनोरंजन भी किया करो। एकान्त का अभ्यस्त आदमी स्वभाव का चिड़चिड़ा हो जाता है। तुम्हारी भी यही स्थिति है। बाप की मृत आत्मा को शान्ति

प्रदान करने की जगह तुम उसे कष्ट पहुंचा रही हो। ब्याह का प्रस्ताव ठुकरा कर तुम नर्क की भागिनी बन रही हो। यह उचित नहीं। तुम्हें समझ से काम लेना चाहिये।"

"मैं उपदेशों को बुरा नहीं समझती; लेकिन तुम इसके अधिकारी नहीं हो और कोई बात करो। मैं अपना निश्चय नहीं बदल सकती।" बंसरी ने उपेक्षित स्वर में यह कहा और हाथ में पर्स उठा बाहर जाने का आयोजन करने लगी।

विपिन एक दम खिसिया गया। लेकिन उस खिसियाहट को छिपाने के लिये कई क्षण तक मौन बैठा रहा। बंसरी गैरेज में आयी और कार स्टार्ट कर जाना ही चाहती थी कि पीछे से आ गया वह और मुँह पर यत्न पूर्वक हँसी लाता हुआ सहज स्वर में बोला —"हजरत गंज जा रही हो, तो मुझे मेरे बँगले पर छोड़ देना। आज कार नहीं लाया था। पेन्टिग होने को गयी है।"

यद्यपि बंसरी को डाली गंज जाना था; लेकिन उस व्यर्थ की बला विपिन से पीछा छुड़ाने के लिये उसने केवल 'हाँ' द्योतक सिर हिला दिया।

जब विपिन अपने बंगले में चला गया, तो बंसरी के मुँह से एक दीर्घ-उच्छवास के साथ निकल गया—"भोला इन्सान कितना सरल होता है। यह तो शराफत के चोगे में छिपा हुआ शैतान था।"

उसके बाद कार दौड़ने लगी और बंसरी सोचने लगी कि एक बसन्त हैं जो सरलता का प्रतीक और दूसरा यह आसुरी प्रवृत्ति वाला नर-अधम विपिन।

४

सावन के मेघ मल्हार गा रहे थे। रिमझिम बूँदों का स्वर धरती पर आ उसके साज के साथ बज रहा था। काली सड़कें पानी से नहाकर ठंडी पड़ गयी थीं। आज प्रातः से ही वर्षा का यह व्यापार अनवरत रूप से चल रहा था। हवा शीतल थी, जो अब सांध्य बेला में बर्फीली बन गातों में सिहरन उत्पन्न कर रही थी। बंसरी ने स्वयं आकर बरामदे की बत्ती जलाई और फिर फुलवाड़ी में नंगे पैर जा एक झुक रहे गुलाब के पौधे को सुधारने लगी। सहसा उसकी दृष्टि वसन्त के कमरे पर पड़ी। कमरे में अँधेरा था और चारपाई पर श्वेत वस्त्रों में लिपटी, कुछ स्पष्ट न देख पड़ने वाली एक मनुष्य मूर्ति दृष्टिगोचर हो रही थी। उसके पाँव आगे बढ़े और चौखट पर पहुंच वह पूछने लगी—"बत्ती क्यों नहीं जलायी वसन्त? अन्धेरे में बैठे हो ?"

बसन्त हड़बड़ा कर उठ बैठा और जल्दी से स्विच आन कर दिया। सामने बंसरी खड़ी थी। उसके मुँह से स्वागत स्वरूप निकल गया —"आइये! बैठिए!" कहकर उसने हाथ से चारपाई की ओर संकेत किया।

लेकिन बंसरी वहाँ से दो कदम आगे बढ़कर रूक गयी और बसन्त सकुचा-सकुचा सा नीची दृष्टि किये उसकी ओर देखता रहा।

"कई दिन से तुम रात में खाना नहीं बनाते हो? क्या ··· ?"

"सवेरे भोजन अधिक हो जाने पर साँझ के लिये बच रहता है, तो रात को हैरान नहीं होना पड़ता।" बसन्त ने यह कहकर बंसरी को इस सम्बन्ध में और कुछ पूछने के लिये रोक दिया।

लेकिन बंसरी को उसमें सन्देह था। वह समझ गई कि बसन्त अपनी मनःस्थिति छिपाने के लिये मिथ्या का सहारा ले रहा है। वह बोली—आज अभी कुछ बनाओगे ?"

उत्तर में बसन्त सिटपिटा कर कह गया—"हाँ, हाँ क्यों नहीं।"

बन्सरी बाहर जाकर बूँदों में नहाने का आनन्द लेने लगी। लगभग दस मिनट तक वह फुलवाड़ी में घूमती रही और फिर टहलती हुई जब बरामदे की ओर जा रही थी तो उसने देखा कि बसन्त चारपायी पर बैठा कुछ चबेना चबा रहा है। बंसरी का मन हुआ कि जाकर उससे कुछ पूंछे कि आखिर ऐसा क्यों करता है वह। किन्तु वह वहाँ तक जा न पाई। पता नहीं क्यों ? वह बरामदे में आई। फिर स्नान-गृह में जाकर हाथ पैर धोये। तत्पश्चात ड्रेसिंग रूम में पहुँच कपड़े बदल कर ईज़ी चेयर पर बैठ गई। हृदय की धड़कन बढ़ने के साथ-साथ उसका सारा शरीर ठिठुरने लगा और मन हुआ चादर ओढ़कर लेट जाये। लेकिन तब तक बूढ़ी महराजिन जो प्रतीक्षा में ही खड़ी थी कि कब बांसू बिटिया आवे और मैं सांझ की चाय उन्हें पिला दूँ। यद्यपि अब रात हो गयी थी; किन्तु फिर भी बुढ़िया का उत्साह ज्यों–का–त्यों जागृत था। वह चाय की ट्रे लाकर सामने मेज पर रखती हुई बोली—"बड़ी पगली है बिटिया हमारी। पानी में भीग कर आई हो। वाह रे। तुम्हारे शौक। लो जल्दी से चाय पियो। अभी बदन में गरमाहट आ जायेगी।" यह कहकर उसने जल्दी–जल्दी टोस्टों पर मक्खन लगाया। फिर मसाला और नमक छिड़क कर उसके हाथ में दे कप में चाय डालने लगी।

बंसरी महराजिन का तनिक भी विरोध नहीं कर पाई। और करती भी कैसे, उसकी गोद में खेली थी जो।

सहसा महराजिन की दृष्टि फुल स्पीड में चल रहे सीलिंग फ़ैन

पर पड़ी। तत्क्षण ही उसका रेगुलेटर घुमाती हुई वह मधुर भर्त्सना भरीं वाणी में बोली—"यो ही जाड़ा है और उस पर पंखा खोल रक्खा है। न जाने तुम्हारा बचपन कब जायेगा !"

पंखा बन्द हो गया। और बंसरी महाराजिन की ओर देखकर मुस्कराने लगी।

× × × ×

चाय पिलाकर महराजिन चली गई और बंसरी पुनः विचारों के भँवर में खो गयी। आदतों से तो बसन्त फुर्तीला, चुस्त और काम काजी मालूम होता है, फिर खाना बनाने में इतना आलस्य क्यों ? समझ में नहीं आता कि उसके अतीत के गर्भ में कौन सा इतिहास सोया पड़ा है। हरदम उसके चेहरे पर अकुलाहट और हैरानी क्यों रहती है ? कहीं यह कोई विद्रोही तो नहीं है ? अवश्य यह कोई दुखिया है। ऐसा लगता है कि इसके अन्तराल में क्षोभ की ऐसी खाई बन गयी है जो अब किसी तरह भी भर नही सकती। मैं उसका हित चाहती हूँ। वह उस बात को भली-भाँति जानता भी है, फिर भी संकोच करता है। शायद वह अपनी पीड़ा में घुटना-ही अधिक पसन्द करता है। अजीव आदमी है ! मैं तो हैरान हूँ। कभी तो उसकी कहानी मेरे सामने आयेगी ही। इसके लिये मैं निरन्तर प्रयत्न शील रहूँगी।

ऐसा सोचते–सोचते बंसरी वहाँ से उठी और अपने कमरे में जा कमर पर दोनों हाथ बांधकर टहलने लगी। अब पानी बन्द हो गया था और पूरव के आकाश में गोरा चन्द्रमा अपनी सम्पूर्ण कलाओं के साथ उदय हो आया था। सर्दीली हवा केवल शीतल रह गयी थी और सामने कोठी की कार्निस पर से पानी की बूँदे बिजली के तारों पर टपक–टपक कर मोतीं-सी झूल रही थीं, दौड़ रहीं थीं।

५

जब कोई आश्चर्य मन में समा जाता है, तो मनुष्य जड़ बना अहर्निश उसी के प्रति सोचता रहता है इसमें अक्सर ऐसा भी होता है कि रात को उसकी आँखों की नींद हर जाती है। जो केवल अपने लिये जीते हैं, उन्हें दुनिया से कोई मतलब नहीं रहता और जिनकी प्रवृत्ति परोपकारमयी होती है, वे ही उस व्याधि के शिकार बनते हैं। बंसरी की भी यही स्थिति थी। बसन्त ने आकर उसके सम्मुख एक समस्या उपस्थित कर दी। वह स्वयं कुछ अशान्त-सी रहने लगी। उसके सम्पर्क में आने वाला कोई भी प्राणी दुखी रहे यह उस असह्य था। प्रातः होते ही उसने अपने कमरे में बसन्त को बुलवाया। बसन्त ढीली मोहरी का श्वेत पायजामा और श्वेत खद्दर की हाफ़ कमीज पहने हुये उसके सम्मुख आ खड़ा हुआ। मंगू नाश्ते की प्लेट लाकर मेज पर रख गया और बंसरी बसन्त की ओर उन्मुख होकर सरल-स्वर में कहने लगी—"बैठो लो पकोड़ियाँ खाओ। चाय भी आती है।"

संकोची बसन्त बैठ तो गया; लेकिन उसने पकौड़ियों में हाथ भी नहीं लगाया। यह देख बंसरी को हँसी आ गई। वह अपनी दंत पंक्ति बाहर निकाल कर कहने लगी—"इतना संकोच क्यों करते हो? मैं मालिक और नौकर में भेद नहीं समझती।" यह कहने के साथ उसने पड़ौसियों की प्याली उसके सामने बढ़ा दी।

बसन्त ने एक पकौड़ी उठाई और उसको धीरे-धीरे दाँतों से कुचलने लगा। बंसरी की प्लेट खाली हो चुकी थी और अब की बार मंगू की जगह महराजिन स्वयं दो प्लेट में पकौड़िया लाकर रख गई। तब बंसरी बसन्त से मुलायम स्वर में बोली—"लो पकौड़ियाँ

ग्रौर ग्रा गई ग्रौर तुम्हारी ग्रभी ज्यों-की-त्यों-ही रखी हैं।"

बंसन्त कुछ उत्तर न दे सका ग्रौर बंसरी ने उसके सामने दूसरी प्लेट भी रख दी।

"ग्ररे ! यह क्या करती हैं ग्राप ? बहुत हो जायेंगी" बसन्त ग्रचकचाकर बोल उठा। इतने में चाय ग्रा गई। ग्रौर उसका एक घूँट गले से नीचे उतारती हुई बंसरी बोली—"कल रात को तुमने शायद खाना नहीं बनाया ?"

वसन्त के चेहरे का रंग उड़ गया। वह घबड़ाहट भरे स्वर में बोला—"बनाया क्यों नहीं था।"

"वह मुझे मालूम है।" कहने के साथ बंसरी इस ढ़ंग से मुस्कराई कि बसन्त समझ गया शायद वास्तविकता को इसने भाँप लिया है। वह मौन रहा ग्रौर जल्दी से चाय का प्याला उठाकर होंठो से लगा लिया।

बंसरी पूछने लगी—"बसन्त तुमको इस महीने का वेतन मिल गया। फिर भी तुम तकलीफ उठाते हो। यह वात समझ में नहीं ग्रायी ? रुपये कहीं भेज दिये हैं क्या ?"

"नहीं, नहीं। ऐसा नहीं। मेरा कौन ग्रपना बैठा है जिसको रुपये भेजने हैं। माँ का मैंने मुँह ही नहीं देखा ग्रौर बाप ग्रकाल मृत्यु को प्राप्त हो गया। ब्याह इस लिये नहीं किया कि मैं स्वयं ही ग्रपने जीवन का मार्ग नहीं निश्चित कर पा रहा हूं।" बसन्त ने जितनी व्यवस्ता के साथ यह बात कहीं उससे बंसरी ने यह ग्रनुभव किया कि बसन्त मुझ से कुछ छिपा रहा है। वह उड़ती चिड़िया पहचानती थी। उसने देखा कि उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही

हैं। वह मौन रही और प्रसंग बदल कर दूसरी बात करने लगी।

जब बसन्त अपने कमरे में आया तो वह सोच रहा था कि कहीं ऐसा न हो कि मुझे यह नौकरी भी छोड़नी पड़ जाय; क्योंकि मैं जन समुदाय में रह कर भी सबसे प्रथक रहना चाहता हूँ और बंसरी मुझे अपने निकट सम्पर्क में लाने का प्रयत्न कर रही है। मैं किसी के घनिष्टत्व में नहीं बंधना चाहता। जो सुख नसीब में नहीं वदा है उसके सपने देखना बौने का चाँद छूने की तरह है। मुझे सतर्क रहना चाहिये। कहीं बंसरी की विशेष अनुकम्पा मेरे अहित का कारण न बन जाय। लोग कहते हैं कि सुखी आदमी चैन से रहते हैं, लेकिन मेरा तो विश्वास बन गया है कि गरीब और क्या अमीर किसी को भी एक क्षण शांति से नहीं बैठ मिलता है।

और बंसरी गम्भीर चिन्तन में डूब रही थी कि आखिर बसन्त किस धातु का बना है जो घुटन में व्यस्त रहता है। उसे सांस तक लेने की सुधि नहीं रहती संसार कितना विचित्र है। प्रत्येक मनुष्य धरती पर समस्या का भार लेकर उतरता है और जीवन-पर्यन्त उस गुत्थी को सुलझाता रहता है।

———

६

अब नियम बन गया। प्रातः होते ही बन्सरी बसन्त को नाश्ते पर बुला लेती। फिर देर तक उससे बातें करती रहती; लेकिन वह अधिकांश अपने को समाचार-पत्रों में ही भुलाये रहता था। इस प्रकार दो महीने बीत गये और शरद ऋतु आ गई।

गावों में कांस फूल चले थे और खंजन पक्षी ने अपने लिये गांव और नगर का भेद नहीं रखा था। उसके पर थे। इसलिये कोसों का व्यवधान उसके लिये अंगुल-मात्र था। जिस तरह पखेरू पवन में उसका आँचल पकड़ कर उड़ता है, ऐसे ही समय भागता है दूर, बहुत दूर जिसे कोशिश करने पर भी मनुष्य नहीं पकड़ पाता जीवन की अनमोल घड़ियाँ बीत रही थीं; लेकिन बसन्त का हृदय मरू-प्रदेश बना हुआ था। लेकिन आज वह जब मंगू के बुलाने पर कोठी में आया तो बूढी महाराजिन बिट्टो उससे कहने लगी—"बन्सू बिटिया एक जरूरी काम से कलक्टर के बँगले गयी हैं। तुम बैठो। मैं चाय लेकर आती हूं। वे जल्दी ही आ जायेंगी ! ऐसा कह गयी थीं।"

बसन्त के हाथ में पड़ गया एक दैनिक पत्र और उसकी दृष्टि काले अक्षरों पर पड़ने लगी। तभी वहाँ एक पैन्ट सूट धारी साहब आकर बैठ गये और बसन्त से पूछने लगे—"बंसरी देवी कहाँ हैं ?"

"डी० एम० के बँगले गई हैं।" इस संक्षिप्त उत्तर को देकर बसन्त अखबार पढ़ने का प्रदर्शन करने लगा किन्तु वह कन्खियों से इन महाशय की ओर बड़े ध्यान से देख रहा था।

मंगू नाश्ता लाकर छोटी गोल मेज पर रखता हुआ आगन्तुक सज्जन से बोला—"विपिन बाबू। नाश्ता कीजिये, बिटिया रानी आती ही होंगी।"

इसके बाद उस बूढे की दृष्टि बसन्त की ओर घूमी और कुछ बोझिल स्वर में उसके होठ हिलकर कहने लगे—"लो आप भी आओ बसन्त बाबू।"

बसन्त न मन होते हुये भी जाकर विपिन का हिस्सा बटाने लगा। तब विपिन ने उसको नीचे से ऊपर तक खूब ध्यान से देखा और फिर धीरे से प्रश्न किया—"आपका परिचय ?"

"मुझे बसन्त कहते हैं और आप ......?"

"मैं सिविल सर्जन का पुत्र विपिन हूं। बंसरी मेरी भावी पत्नी है।"

विपिन ने यह बात बड़े ही गर्व पूर्वक कही और फिर चाय की चुस्कियाँ लेने लगा। बसन्त बैठा रहा गुमसुम लेकिन विपिन का दर्श फूल रहा था। उसने फिर पूछा—"किस काम से आये थे ?"

"जी, मैं तो सौरभ प्रेस में क्लर्क हूं। यहीं सर्वेन्ट क्वाटर में रहता हूँ।"

बसन्त के इस उत्तर पर विपिन कुछ चौंका। वह सोचने लगा कि उस साधारण से नौकर को बंसरी ने इतना महत्व दे रखा है कि वह कमरे में आ उसके टेबिल पर बैठ कर चाय पीता है। अवश्य इसका घना लगाव है बंसरी से।

अब विपिन की दृष्टि संदेह से भर गयी थी और प्रश्न खोज

पूर्ण हो गया था। उसने पूछा—"अच्छा। तो मालूम पड़ता है कि आपकी मालकिन आप पर विशेष कृपा रखती हैं। सोभाग्य सराहिये ज़नाब।"

"हाँ साहब, आप ठीक कहते हैं।" इतना कहकर बसन्त उठ खड़ा हुआ और बाहर बरामदे में जा बंसरी के आने की प्रतीक्षा करने लगा।

अन्दर कमरे में बैठा विपिन एक दम हतबुद्धि-सा हो गया था। उसके अन्तर में हा हाकार मचा था और मस्तिष्क में प्रलय की आँधी चल रही थी। अब उसे आभास हुआ कि बसन्त ही वह रोड़ा है जिसके कारण बंसरी मुझ से दूर-दूर भागती। इस भुनगे की क्या बिसात जो मेरा मार्ग रोके। इसे मैं चुटकी से मसल डालूँगा। दुश्मन को कभी कमजोर नहीं समझना चाहिये। कैसा अन्धेर है। धन झोपड़ी में रहना पसन्द करता है। यदि ऐसा ही रहा तो एक दिन मर्यादा का नाम-निशान ही मिट जायगा।

विपिन का ध्यान बंसरी की ओर गया। वह सोंचने लगा कि बंसरी इतनी हेय हो सकती है कि यह मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। नारी का क्या भरोसा। उसका पैर फिसलते देर नहीं लगती है। बंसरी को मैं एक आदर्श रत्न समझता था; लेकिन निकली वह कागज का हीरा। अब मेरे पास मसाला है और मैं उसके तर्कों से खूब लड़ सकता हूँ। मैं…… ।

इतने में बाहर हार्न बजा और विपिन की दृष्टि दरवाजे की ओर उठ गयी। उसके विचारों का तार तम्य टूट गया था और हंसती हुई बंसरी बसन्त के साथ कमरे में प्रवेश कर रही थी।

———

७

उस दिन विपिन पूरे दिन और सारी रात हैरान रहा। वह उस समय तो बसरी से कुछ भी नहीं पूछ पाया था और अब पूछेगा भी नहीं, यह निश्चय कर रखा था। दूसरे दिन सबरे अनायास ही वह उसकी कोठी पर पहुँच गया। उस समय बंसरी स्नानादि से निवृत हो गीता का पाठ कर रही थी। यथा समय वह पाठ से उठी और मंगू को बसन्त को बुलाने के लिये भेज दिया।

विपिन को बहुत बुरा लगा। वह यह सोच कर खिसिया उठा कि यह टालने वाली नीति बंसरी ने अच्छी अपनायी। जब बसन्त आकर बैठेगा तो मुझे अपनी कहने का अवसर ही नहीं मिलेगा यही सोचा होगा उसने; वह स्वर में शीघ्रता भर कर कहने लगा —"आज रेसकोर्स चल रही हो? देखना मेरा जैक चान्स कैसे मारता है।"

नाक-भौं सिकोड़ती हुई बंसरी ने उपेक्षा पूर्वक जबाब दिया —"मैं इन व्यर्थ के बखेड़ों में नहीं पड़ती।"

विपिन और भी जल भुन उठा मगर अन्तर्भाव छिपा प्रकट में हँसने की विफल चेष्टा करता हुआ बोला—"यह तो मैं जानता हूं कि तुम एक वैरागिनी हो; लेकिन मेरा भी कुछ हक है तुम पर। इस लिये आग्रह करता हूँ।"

"क्या मतलव? कैसा हक? यह क्या कहते हो?" बंसरी ने अपनी मुद्रा कठोर बना ली थी।

बसन्त आ रहा था बंसरी के कमरे की ओर। बंसरी का तेज स्वर सुनकर वह बाहर ही सिमटकर खड़ा हो गया।

और विपिन बेहयायी की हँसी हँसकर कहने लगा—"जैसे तुम कुछ जानती ही नहीं। तुम ······ ।"

"एक बार कह चुकी हूँ कि तुमसे ही क्या किसी से भी ब्याह नहीं करूँगी। फिर पता नहीं, बार-बार वही बात क्यों कहलाते हो। यदि मैत्री के भाव से आये हो तो मेरे घर के दरवाजे तुम्हारे लिये हमेशा-हमेशा के लिये खुले हैं और यदि ब्याह प्रस्ताव पर मेरी स्वीकृति लेनी है तो उसको तिलाँजिली दे दो और इधर घूमकर भी न देखो। बस ! मैं तुमसे बार-बार न कहूँगी।" बंसरी ने ऊब कर यह कहा। फिर कुर्सी से उठकर टहलने लगी।

विपिन अपमान को न सह सका। बिना कुछ जबाव दिये हुये ही आक्रोश भरी मुद्रा में वेग के साथ वहाँ से चला गया।

तब बसन्त कमरे में आया। बंसरी उसे देखते ही फूल-सी खिल उठी।

× × × ×

बंसरी और विपिन के प्रति बसन्त आफिस में बैठा सोचता रहा कि बंसरी एक उच्च चरित्र की नारी है। उसमें कितना बड़ा त्याग है। ऐसा लगता है उसके हृदय में कोई गहरी टीस है जिससे वह इतनी उदार हो गयी है। महान् आश्चर्य है कि वह ब्याह नहीं करेगी। विपिन का अस्तित्व उसके सम्मुख कुछ भी नहीं है। वह तो शहर का रंगीला युवक है और रंग-रगेलियों में खो जाने को

जिन्दगी समझता है। वैभव हमेशा साथ नही रहता। धन वह नशा है जो मनुष्य को मनुष्यता के दायरे से निकाल कर हैवान का चोगा पहना देता है। चाँदनी केवल चार दिन की होती है और सबसे बड़ी बात तो यह है कि अहंकार उस अदृष्य स्टष्टा का भोजन है। इस लिये विपिन की बहार जल्दी ही पतझड़ में बदल जायेगी और बंसरी एक दिन अमृत्व की घूँट पीकर सबके लिये एक कहानी बन जायेगी।

और ऐसे ही वह धर पर भी सोचता रहा। पता नहीं उसे यह सब सोचकर घृणा क्यों हो आयी थी ?

———

८

जिस प्रकार वसन्त बंसरी के लिये एक पहेली बना हुआ था। ठीक वैसे ही बंसरी भी उसके लिये एक पहेली हो गई थी। दोनों एक दूसरे को बूझ रहे थे। न कोई आगे बढ़ता न कोई पीछे हटने को प्रस्तुत था। उभय पक्ष आकर्षण की डोर में बँधकर एक दूसरे के निकट आ रहे थे; लेकिन फिर भी अभी व्यवधान था।

बंसरी वसन्त की ओर आकृष्ट हो रही थी, इस भावना को लेकर कि वह एक सरल पुरुष हैं, सादे लिबास और गम्भीर विचारों वाला। कभी-कभी वह उसके प्रति इतनी अधिक श्रद्धा से भर जातीं कि सोचने लगती मेरे लिये यह साथी उपयुक्त है। यह जीवन से कन्वे से कन्धा मिलाकर सहारा देने कीं क्षमता रखता है। मैं इसे देवता समझती हूँ; क्योंकि वह एक दम भोला है। नरम इतना है जैसे मोम का पुतला।

और दूसरे क्षण उसका हृदय वसन्त के प्रति करुणा से भर आता। तब वह मन-ही-मन कहने लगती-बेचारा कोई दुःखी मालूम पड़ता है! मुझे उस पर तरस आता है। मैं उसकी वाणी पर मुग्ध हूं। व्यवहारिक ज्ञान उसमें कूट-कूट कर भरा है। वह मौन का पालक है। उसके विचारों में गहराई है और असन्तुलित होना तो जैसे वह जानता ही नहीं। कुछ भी हो मैं स्वयं नहीं जानती कि मैं उसकी ओर बराबर ही क्यों खिंचती चली जा रही हूँ।

ऐसे ही एक दिन जब दीवाली की रात थी और सारी कोठी बिजलीं के रंग-बिरंगे बल्बों से जगमगा रही थी, बंसरी ने बसंत को भोजन पर आमिन्त्रत किया। वह पहला अवसर था जब मेहमान के रूप में बंसरी ने उसे एक शानदार दावत दी थीं।

कोठी का चौक हीरे-मोती- सा जगमगा रहा था। बन्सरी बैठी ग्रामो-फोन पर नये-नये रेकार्ड बजा रही थी और उसके पास बैठा था बसन्त, जो उल्लास की त्रिवेणी में नहा रहा था। तभी महाराजिन ने आकर सूचना दी–"थाल तैयार है बन्सू रानी।" बंसरी वहाँ पर एक सहेली को नियुक्त कर अपने कमरे गयी और उसके पीछे-पीछे बसन्त। स्टेनलेसस्- टील के चाँदी की तरह चम-चमाते हुए थाल और वैसीं ही रकाबियाँ; विभिन्न प्रकार के भोजनों से भरी उनमें रखी थी चाँदी के छोटे- छोटे चम्मच प्रत्येक वटोरी में पड़े थे। वटोरियों में कई प्रकार की सब्जियाँ थीं सूखी और रसेदार। केशर और मखाने की खीर ऐसे हीं पालक; चौराई और लौकी का रायता, रस मलाई, खीर मोहन, राज-भोग आदि के साथ गरम-गरम खस्ते की कचौड़ियाँ रखी थी। टमाटर, मूली के लच्छे और नीम्बू इत्यादि एक प्लेट में सजे थे।

"लो शुरू करो।" बंसरी ने अतीव मृदु स्वर में बसन्त की ओर देख किंचित-मुस्कराहट के साथ कहा।

यह कहने के साथ बंसरी ने कोर तोड़कर रायते में डुबो दिया। तब अनुकरण स्वरूप बसन्त ने कचौड़ी तोड़ते हुये धीरे-धीरे कहा–"यह सब विशेष आयोजन मेरे लिये हुआ है। इसके लिये मैं आपका किस मुँह से शुक्रिया अदा करूँ? मुझ नाचीज़ को इतना महत्व क्यों दे रखा है आपने? यह कुछ अनुचित- सा लगता है। सोंचिए तो, लाख आप मिलनसार स्वभाव की है; लेकिन फिर भी मालिक और नौकर में भेद तो रहता ही है।"

इस पर बंसरी हंसकर अत्यन्त सरल स्वर में बोली–"तुम नहीं जानते बसन्त कि मैं सरलता की पुजारिन हूँ और तुम सरलता के प्रतीक। फिर भला मेरा अनुराग तुम्हारे प्रति क्यों न बढ़े! तुमको कोई आपत्ति है?"

"मुझे कोई आपत्ति नहीं । लेकिन इतना अवश्य चाहता हूँ कि कहीं मेरे लिये लोग आप पर उंगलियाँ न उठाने लगें कि पानी सिर पर चढ़ रहा है । इसमें आपके लोग घृणा और उपेक्षा से भी भर सकतें हैं । कहावत है कि—'यद्यपि शुद्धम् लोक विरुद्धम्,
नाकरणीयम् नावरणीयम्.

मैं आपको सलाह नहीं देता । विनय करता हूं कि एक छोटे से पक्षी के पर में पहाड़ न बाँधिये, जो वह धराशायी हो जाय ।" बात समाप्त कर बसन्त ने एक लम्बी साँस ली ।

और तभी बंसरी कहने लगी—"ऐसी बात नहीं बसंत । मैं सांसारिक कूटनीति को अच्छी तरह जानती हूँ इसमें बद अच्छा और बदनाम बुरा होता है । मैं झूठे उपहास को नहीं डरती । दुनिया तो कुछ न कुछ कहती ही रहती है । कोई भला आज तक सब को खुश रख पाया है तुम बड़े भीरु- स्वभाव के मालूम पडते हो ।"

महाराजिन दो गिलास मैं केवडा पड़ा पानी रख गयी । उसके घूंट पर घूंट नीचे उतारता हुआ बसंत तनिक संयत होकर बोला —"मैं आपस तर्क नहीं करता; क्योंकि मुझे आपका लिहाज करने में एक प्रकार के संतोष की अनुभूति होती है । मैं आपके साथ बैठकर खाऊं, यह शोभा नहीं देता । कोई देखेगा तो क्या कहेगा ।"

"उंह, फिर वही बात :-अपने लिये मैं स्वयं ही पर्याप्त हूँ । मेरे कान एक बात को सुनकर फौरन ही दूसरे कान से निकाल देते हैं । क्या मजाल, कोई कह दे कि बंसरीं कुचक्र रचने वाली एक प्रपंचिनीं है । मैं किसी को टोकने का मौका नहीं देतीं । आज हमारा मध्यवर्गीय समाज उस गीदड की भाँति हो रहा है जिसकी भभकी केवल कोरीं, थोथी ही होंती है सत्य से मनुष्य को डरना चाहिये । मिथ्या का अस्ति-

त्व ही क्या है ? वही तो जीवन के लिये एक ऐसी बीमारी है जिसको अनायास ही लोग अपना सोना रूपी सत्य बेचकर खरीदतें हैं और फिर उसमें मिल अपना ही अस्तित्व गंवा बैठते हैं। दुनिया को छोड़ो, जो सामने है उसको देखो। मेरी बहुत दिनों से जो लालसा थी अब पूरी हो गई। मैं··· ··· ।"

"क्षमा कीजिये ! यदि धृष्टता न समझे, तो यह बताने का कष्ट करें कि वह आपकी उत्कृष्ठ लालसा कौन-सी थी ?" बसंत बहुत ही सावधनी के साथ सधे हुये शान्त -स्वर में अपनी बात कहने का साहस कर सका था।

किन्तु बंसरी अतीव आनन्द से भर रही थी कि चलो बसंत की जबान तो खुली। वह मन्द स्मित बिखेरती हुई प्रसन्न स्वर में कहने लगी—"मैं जिम्मेदारियों से बहुत घबड़ाती हूं। एक दिन भी चैन से नहीं बैठ मिलता। कोई न कोई काम लगा हीं रहता है। तुम आ गये हो। मुझे सहरा हो गया है। मैं तुम पर काम छोड़कर दस- पाँच दिन घूम- फिर सकती हूं। में ········ ···।"

"ऐं ! क्या कहा आपने ? मेरा इतना विश्वास ! एक अजनबी पर आपको इतना यकीन कैसे हो गया ?"

बंसरी हंस पडी और हंसते-हंसते बोली—"ये सब बातें अनुभव की जाती है, माषा बन कर सामने नहीं आ सकतीं।"

बसंत मुस्करा उठा। वह भोजन समाप्त कर चुका था। बंसरी भी उठी और बेसिन पर जा मुंहं- हाथ धोने लगी।

उस दिन बंसरी ने गायन-वादन के आयोजन के साथ ही साथ नृत्य कीं भीं व्यवस्था की थी। आज कीं रात जागरण में ही व्यतीत

होनी थी, इसलिये वसंत भी उसी आमोद-प्रमोद में व्यस्त था।

दूसरे दिन प्रातः से लेकर दोपहर तक वसंत नींद में डूबा रहा। उसकी नींद की नदी में स्वप्न तैरते रहे, जिसमें बंसरी का ही प्राधान्य था।

और बंसरी की आँखों में नींद का नाम न था उसे ऐसा लग रहा था कि उसे उसकी आत्मा मिल गई है। अब वह निर्जीव न रहेगी; सुस्त जिन्दगी की जागरण में बदल देगी।

———

६

अब वसंत न तो प्रेस में क्लर्क था और न नौकरी के गिने हुये घन्टों तक मेहनत करने वाला एक मजदूर। वह बंसरी का सहायक (पी० ए०) था। वह उसके साथ-ही-साथ रहता। वह प्रेस और ज्वैलरी की दूकान में जाकर हिसाब देखता और पत्र व्यवहार भी वही करता था। सर्वेन्टस क्वार्टर से हटाकर बंसरी ने कोठी में ही उसको एक कमरा दे दिया था। उसके लाख इन्कार करने पर भी उसको बन्सरी के साथ ही प्रातः और सायं का भोजन करना पड़ता।

एक दिन बंसरी ने उसको बताया कि अब उसका वेतन तीन सौ रूपया मासिक कर दिया गया है। लेकिन बसंत को कोई खुशी न हुई। वह सूखी हंसी हंसकर रह गया। बंसरी थी उसकी पूरी भक्त वह उसे एक मिनट के लिये भी उदास नहीं रहने देती थी। इस बात को लेकर समस्त कर्मचारी-वर्ग में चख–चख मच गयी थी और कानाफूसी का बाजार गर्म हो उठा था। मगर उस सिंहनी के सम्मुख कोई आंखे तक नहीं उठा पाता था। जब वह सबके लिये पारस की बटिया थी तो क्या अपनी कंचन-सी काया को काँच बना डालती। यह असम्भव था; क्योंकि उसने निर्माण के साथ–साथ शान्ति और सन्तोष के मार्ग की भी शोध की ओर अब भी निरन्तर उसमें व्यस्त थी। शायद वह यह जानना चाहती थी कि जिन्दगी का महान सुख क्या है ? वह अक्सर सोचा करती कि अब मेरा जीवन सुखमय हो जायेगा। बसन्त असली सोना है। वह समाज की कटु–कसौटियों पर कसते–कसते ऐसा कुन्दन बन गया है जिस में कहीं भी टांके का नाम नहीं। मैं उसको यदि अपना जीवन–साथी बना लूँ तो वह दुनियावी डर से मुक्त हो प्रसन्न रह सकेगा। समय की गति बड़ी विचित्र होती

है। वह कभी एक जैसा नही रहता। सोचे हुए काम को जल्दी कर लेने में कल्याण रहता है। मैं सोचूँगी कि मुझे क्या करना चाहिये।

ऐसे–ही बंसरी सोचते–सोचते ऊब कर निस्श्वास लेती और फिर तत्क्षण ही दूसरे विचार आकर उसे घेर लेते कि क्या यह सचमुच सत्व है कि बसंत का स्वजन और परिजन कोई नही। पता नही वास्तविकता क्या है ? उस सम्बन्ध में उससे बहुत कुछ पूछा; लेकिन उसने उस बहुत को थोड़े में ही टाल दिया। व्यवहारिक ज्ञान में इतना कुशल, व्यक्ति मैंने आज तक नही देखा।

इस प्रकार बंसरी का नित्य का व्यापार चल रहा था और बसन्त को ऐसा लग रहा था मानों उसके सिर पर कोई बहुत बड़ा पहाड़ रख दिया गया है। जिसके भार से वह दबा जा रहा है।

सबसे अधिक महान् आश्चर्य की एक नई बात और थी। बूढ़ी महाराजिन बिट्टो और बसंत को देखकर मुँह बिचकाने वाला बूढ़ा मगू दोनों ही बसंत से अत्यधिक स्नेह और ममता रखने लगे थे। बंसरी के लिये यह हर्ष स्वर्ग के सुख से बढ़कर हो गया था।

————

१०

विपिन अब बंसरी के यहाँ बहुत कम आता था। उसे बसन्त से ईर्ष्या थी। उसी की अग्नि में वह अहर्निश जलता रहता था और निरन्तर उसके मस्तिष्क में यह बात टकराती रहती कि किस प्रकार बसंत को नीचा दिखाया जाय, जिससे बंसरी को शर्मिन्दा होकर स्वयं अपने पर ही पछताना पड़े। कुचक्र रचने में देर नहीं लगती देर तो लगती है उसमें, जो सुकार्य होता है और कुप्रवृत्ति के व्यक्ति भला सुमार्ग और सुकार्यों की परिभाषा क्या जाने। विपिन बंसरी के जीवन के नाटक का खलनायक था। उसने अपना अभिनय परदा उठने से पहले ही आरम्भ कर दिया।

लोगों का कहना है कि पैसे वाले आदमियों को बदनाम होने में देर लगती है; क्योंकि पैसा उनकी हर बुराई पर अपना आँचल ढक लेता है। लेकिन बंसरी के साथ ऐसा नहीं हुआ। होता भी कैसे ? आवश्यकता से अधिक सीधी थी वह जो। अड़ोस-पड़ोस में यह चर्चा फैल चुकी थी कि बंसरी एक साधारण से क्लर्क से व्याह करने जा रही है। तभी तो उसके सिर पर अपनी दौलत का ताज रख दिया है। बड़े-बूढ़े आपस में गूफ्तगू करते—"जमाने ने अच्छी करवट बदली है। कुलीन घरानों की लड़कियाँ खानाबदोश और आवारों पर अपने जीवन को निछावर कर रहीं हैं। घोर कलियुग है आजकल लाज और मर्यादा तो कहीं रह ही नहीं गयी।"

और यह सब लगाई-बुझाई थी विपिन की। उसने तो यहाँ तक हाथ-पाव मारे और षड्यन्त्र रचा कि बंसरी का कर्मचारी वर्ग उसके विरुद्ध आन्दोलन खड़ा कर दे; लेकिन इसमें वह सफल नहीं हो पाया।

बंसरी को अपने मान और अपमान की तनिक भी चिन्ता नहीं थी। वह जीवन की पुतली थी और मनुष्य–देह में एक सच्ची मानवी। वसंत जब भी उसका ध्यान इस ओर आकृष्ट करता, तो वह छूटते ही कह देती—"अरे छोड़ो इस पचड़े को। इन व्यर्थ की बातों को न सोचा करो। हाथी राह पर चलता है, तो कुत्ते जरूर भौंकते हैं।

तब वसन्त उसके मुंह की ओर देखकर रह जाता और गर्व से उसका सीना फूल उठता। वह सोचने लगता कि आर्यावर्त्त में आदर्श नारीयां न हों, यह असम्भव है। बंसरी में वह शक्ति है कि वह आग को ठंडा कर सकती है, तूफान को निगल सकती है और पत्थर को मोम बनां सकती है।

यह सब तो था; लेकिन कहने वालों का मुंह नहीं बन्द किया जा सकता। सभी अपने–अपने गाल बजा रहे थे और बंसरी आजकल बहरी बन गई थी। उसे एक बात से अत्यधिक खुशी थी जो अब विपिन उसके घर नहीं आता था।

———

११

एक शरद ऋतु गई, दूसरी आई और तीसरी भी जब बीती तो बसन्त बंसरी के साथ बसन्ती हवा में बहता हुआ फूलों के उस सुन्दर देश में जा पहुंचा जहाँ की सुगन्ध मनुष्य को अनुपम तृप्ति में बाँध लेती है। उसे एकान्त बहुत कम मिल पाता और यही कारण था कि अपने अतीत, वर्तमान और भविष्य के लिये सोच-सोचकर दिमाग़ में फितूर भरने का उसे अब मौका नहीं मिलता। वह बंसरी में लीन न होते हुये भी लय हो गया था; क्योंकि बंसरी अब उससे श्रद्धा करती थी और किसी भी भाँति उसे देवता से कम नहीं समझती थी।

फागुन का महीना था। एक संध्या को कुछ ज्वर होने के कारण बंसरी दूकान और प्रेस नहीं जा सकी। अतः बसंत को अकेले ही जाना पड़ा। प्रेस के कार्य से निवृत होकर जब वह कार द्वारा हजरत गंज पहुंचा और दूकान में प्रविष्ट होना ही चाहता था, तभी उसकी दृष्टि सामने आ रहे विपिन पर पड़ी। शिष्टाचार वश उसने उसकी ओर दोनों हाथ जोड़ दिये।

विपिन निकट आ गया था। उसके साथ एक पुलिस इन्सपेक्टर था जो उसका परिचित था और अचानक ही उसे यहाँ मिल गया था। उसने गौरपूर्वक बसंत की ओर देखा और बसंत भी उसकी ओर निहारने लगा। सहसा बसंत कुछ ठिठका और एक दम उसकी दृष्टि नीचे स्थिर हो गई। ठीक उसी समय उस दरोगा ने आगे बढ़कर हाथ मिलाया और हँसकर बोला—"कहो भाई अनन्त कहाँ रहे इतने दिन ?"

बसंत के शरीर से पसीना छूटने लगा। वह किंकर्त्तव्यविमूढ़

सा खड़ा रहा। श्रौर विपिन विस्मय विस्फारित नेत्रों से उसकी श्रोर देखकर व्यस्त स्वर में पूछने लगा—"अनन्त! लेकिन आपका नाम तो बंसत है?"

"नहीं साहब।" दरोगा ने यह कहने के साथ बसन्त का पहुंचा पकड़ लिया श्रौर विपिन की श्रोर उन्मुख होकर कहने लगा—"इनका नाम अनन्त है। ये फरार हैं। इनके नाम वारन्ट है।

"ऐं!" कहकर विपिन चौंक उठा श्रौर श्राँखें फाड़-फाड़कर बसंत की श्रोर देखने लगा।

बसन्त बुत बना खड़ा था मूक-बधिर श्रौर अन्धों जैसा। दरोगा ने सीटी बजायी जिससे तत्क्षण ही निकट-वर्ती दो सिपाही वहाँ आ गये। बस फिर क्या था, कोतवाली टेलीफोन हुआ श्रौर फौरन ही निन्यानवे नम्बर की पुलिस की द्रुतगामी दल वाली लारी आ गयी। दूकान के कर्मचारी भी बाहर आ गये थे श्रौर तमाशाइयों की अच्छी खासी भीड़ लग गयी। हक्का-बक्का हो लोग बसंत की श्रोर देख रहे थे। सभी की यह जिज्ञासा थी कि पुलिस यहाँ क्यों आई? श्रौर दरोगा ये बसन्त के हाथ में हथकड़ियाँ क्यों पहना दी? धीरे-धीरे सभी पर वास्तविकता प्रगट हो गई। ज्वैलरी की दूकान के बड़े मुनीम ने टेलीफोन द्वारा बंसरी को इस घटना की सूचना दे दी श्रौर उसकी प्रतिक्षा में रत वह दरोगा से मिन्नत करता रहा कि थोड़ी देर तक वह यहीं रुके रहें। लेकिन अधिकारी वर्ग अहंकार से पहले खेलता है। दरोगा मुनीम की बातों की श्रोर ध्यान न देकर चलने को उद्यत हो बसन्त से बोला—"मैं मजबूर हूँ दोस्त, अब मैं तुम्हारे बचपन का मित्र श्रौर सहपाठी विमल नही हूँ। मैं पुलिस विभाग का एक कर्मचारी हूँ। इसलिये तुम्हें गिरफ्तार करना मेरे लिये जरूरीं हो गया है। चलो।" कहकर वह चल दिया श्रौर

उसके पीछे दृष्टि झुकाये हुये बसंत। तमाशबीनों की भीड़ पीछे लग गई। तब सिपाहियों को डाँट-डपट और डंडों का प्रयोग करना पड़ा।

पुलिस की द्रुतगामी दल की मोटर चली जा रही थी और बसंत घुटनों पर सिर रखे औंधे मुँह बैठा सोच रहा था कि आखिर वही हुआ जिससे मैं बचना चाहता था। क्या कहेगी बंसरी अपने मन में? वह मुझसे घृणा करने लग जायगी जब सुनेगी कि मैं बाप का हत्यारा हूं और रेशम किस घाट उतरेगी जब मैं फाँसी के तख्ते पर झूल जाऊँगा? यदि मेरे पास इस समय पिस्तौल होता तो मैं आत्म-हत्या कर लेता। लेकिन अब तो प्राणों पर भी मेरा अधिकार नहीं रहा। वे भी कानून के शिकन्जे में जकड़ गये हैं। काश! मोटर दुर्घटना हो जाय और मैं उसमें काम आ जाऊँ। जब मरना ही है तो जैसे कल वैसे आज। आज मुझे मालूम हुआ कि माँगने से मौत भी नहीं मिलती है।

लारी पों-पों का शब्द करती हुई सड़क की भीड़ को तीतर बितर करती चली जा रही थी। और बसंत मृतप्राय-सा हो सीट का सहारा लेकर लुढ़क गया था। एक सिपाही ने उसके बूट की ठोकर मारी और गुर्राता हूआ बोला—"ऐ! उठकर बैठो।,'

लेकिन बसंत ने जैसे कुछ न सुना और न कुछ अनुभव ही किया। सिपाही का दूसरा बूट फिर उसकी पीठ पर बजा। तब तक लारी कोतवाली के चौक में पहुंच चुकी थी।

———

१२

बंसरी ने मुनीम का टेलीफून सुना, तो वह कटे वृक्ष की भाँति फर्श पर गिर पड़ी और गिरते ही बेहोश हो गयी। बूढ़ी महराजिन और मंगू बुरी तरह घबड़ा गया। वे उसके मुँह पर पानी की छीटें मार कर फिर हथेली और तलुओं को सहला-सहला होश में लाने का प्रयत्न करने लगे; लेकिन वंसरी की चेतना नहीं जागी और वह मूर्छित पड़ी रही।

बसन्त के गिरफ्तार होते ही मुनीम दुकान को जल्दी से बन्द करवाकर उठ आया और वहाँ बंसरी को अचेतना वस्था में देख डाक्टर को टेलीफोन किया।

डाक्टर ने आकर वंसरी की स्थेतिस्टकोप (आला) लगाकर परीक्षा की फिर इन्जेक्शन लगाकर उसको होश में लाया।

बंसरी ने आँखें खोलीं। उस समय उसे जोर का ताप चढ़ रहा था। और श्वेत पुतलियों भंग की नशे की तरह लाल-लाल डोरें पड़ गये थे। "पानी।" उसने तीक्ष्ण कण्ठ से पुकारा।

विट्टों ने गरदन ऊपर उठकर उसको पानी पिलाया। इतने में मूनीम अपनी बूढ़ी आँखों से टप-टप आँसू चुआता हुआ रूँधे गले से वोला—"बसन्त बाबू गिरफ्तार हो गये विटिया रानी। मैंने......।

"उसकी बात न करो मुनीम जी।" यह कहने के साथ उसने अपने दोनों कानों पर हाथ रख लिये।

मुनीम चुप हो गया और कमरे के वातावरण में मौन सननाटा छा गया।

ज्वर बढ़ता गया और बंसरी काँपती गयी। मंगू ने रेशमी रजाई उस पर से उतार फेंकी और कश्मीरी शाली से उसके बदन को ढ़कने लगा। उसने एक झटके में शाल नीचे फेंक दिया और प्रलाप में बड़बड़ाने लगी। "उसका नाम अनन्त है। वह कातिल है !! हत्यारा फरार था। उसके नाम वारन्ट था। वह बसन्त था।"

यह कहने के साथ वह तपाक से उठ बैठीं और जोर से चिल्ला पड़ी। "वह बसन्त था।"

मुनीम ने उसको अपनी कमजोर बांह में समेट लिया और रोता हुआ बोला—"लेट जाओ बिटिया रानी। तुम्हें बहुत जोर का बुखार चड़ रहा है।"

रोती हुई महराजिन उसके माथे पर हाथ रखकर एक दम चीख पड़ी—"हाय राम क्या हो गया है ? मेरी बन्सू को ? माथा तवा-सा जल-रहा है। दौड़ो कोई जल्दी से बुलाओ डाक्टर को।"

बूढ़ा मंगू महराजिन की आवाज पर बाहर भामा और बंसरी फिर तमक कर उठ बैठी और गला फाड़कर चिल्लाई—"मत बुलाओ डाक्टर को। कौन कहता कि मैं बीमार हूं ? मैं अच्छी हूँ, बहुत अच्छी।" यह कहने के साथ वह भरभरा कर चारपाई से नीचे गिर पड़ी। नीचे का एक दाँत होंठ में घुस गया था जिससे रूधिर निकल कर हड्डी को लाल कर रहा था। उसकी पलकें मुँद गयी थीं और हृदय जोर-जोर से धड़क रहा था। महराजिन फूटकर रो पड़ी और मुनीम का सहारा ले उस जिन्दा लाश को पलंग पर लिटाने लगी।

उस समय कमरे में कर्मचारियों और पड़ोसियों की भीड़ लग रही थीं। सब कीं आंखें डाक्टर की प्रतीक्षा में बार-बार दरवाजे की ओर उठ जातीं। रात का पहला पहर बीत रहा था और फाल्गुन की वेसन्ती पुरवाई कमरे के वातायान के अन्दर प्रविष्ट ही विधवा बन मातम मना रही थी।

————

१३

अनन्त था लखपती बाप का बेटा ! दुर्भाग्य ने उसका जीवन नष्ट-प्राय कर डाला था। उसके चाचा रामेश्वर ने स्वयं उसके पिता की हत्या कर दी और उसको झूठे अभियोग में फँसवा दिया। पत्नी रेशम और बच्चों के लिये उसने कानून का उल्लंघन किया। वह फरार हो गया।

कहानी यह है ——

जेल की कोठरी में बैठा अनन्त सोच रहा था कि बचपन कितना मधुर और कितनी बेफिक्री का था। मैं राजमहल के राजकुमार की भाँति पाला गया हूँ। यह कैसे भूल सकता हूँ ? मेरे पिता सोमेश्वर नगर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में से थे और कपड़े के आढ़तिया थोक व्यापारी। पता नहीं कितनी रियासत थीं जो अब भी हैं जिस पर उन्हीं का सगा भाई आस्तीन का साँप बनकर अपना स्वत्व जमाये बैठा है। और सबसे बडी बात तो यह थी कि घर के मालिक वे ही थे। उनके पास लाखों के सोने-चाँदी के जेवरात, हीरे-जवाहरात तथा गिन्नियाँ और अशर्फियाँ थीं। वे अतुल धन राशि के स्वामी थे। इसीलिये तो चाचा रामेश्वर ने स्वार्थ से अन्धे होकर उनकी हत्या कर दी और पाप छिपाने के लिये उन्हें कहीं दूर नहीं जाना पड़ा। मैं गरीब उनकी पाशविक-वृत्ति का शिकार बन गया। इसमें भी चाचा ने लाभ ही सोचा होगा; क्योंकि जब मुझे फाँसी हो जायेगी तो वे रेशम को कौड़ी न देकर सारी जायदाद के मालिक बन जायेंगे। कलियुग खूब फल-फूल रहा है। ऐसा लगता है कि इस युग में ईमानदारी से पैसा कमाकर कोई धनवान नहीं बनता। छल, झूठ और फरेब का बाजार खूब गर्म है। घूसखोरी, सीनाजोरी, और चोरीं तीनों हीं मतवालीं होकर नग्न नृत्य कर रही हैं। मैं स्वयं तो जा रहा हूँ; लेकिन उस

बेचारी रेशम का क्या होगा ? वह रो-रोकर जान दे देगी और बच्चे रोटी का टुकड़ा पाने के लिये भीख माँगते घूमेंगे। ईश्वर उन्हें उठा लेता, तो अच्छा था। अब क्या करूँ ? विवश हूँ। अगर मुझे कोई इस कैद से मुक्त कर दे तो पहले परिवार का गला घोंट दूँ और फिर हँसते-हँसते आकर फाँसी के तख्ते पर झूल जाऊँ। ईश्वर ऐसे दिन किसी को न दिखाये। पाप अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुका है, पता नहीं उसका घड़ा कब फूटेगा ? शायद मैं न रहूँगा तब।

जेल के फाटक पर टँगा हुआ घन्टा घनघनाकर बज उठा। उसके बाद टन्-टन् करके तीन चोटें पड़ी, अनन्त चौंक उठा। तीन बज गया। प्रातः क्या स्थिति होगी मेरी ? यह अच्छा हुआ जो मुझे कोतवाली न रखकर जेल भेज दिया गया। नही तो मैं बन्सरी के समुदाय के सामने सिर नीचा किए हवालात में खड़ा होता। वे लोग मुझ पर फब्तियाँ कसते; उपहास करते और घृणा-पूर्वक मुँह बिचका-कर चल देते। अब कल नहीं तो दो-एक दिन में मुझे अदालत में हाज़िर किया ही जायेगा। तब मेरे सिर पर घडों पानीं पड़ जायेगा और बंसरी की ओर मैं आँख उठाकर देख भीं न पाऊँगा। काश ! इस कोठरी से कोई नाग निकल आता और मुझको डस लेता। कैसीं विडम्बना है। हाय रे मनुष्य! तेरा कुछ भीं अस्तित्व नहीं। क्षण भंगुर संसार का तूफानीं इन्सान है इसलिये पानी के बुलबुले कीं भांति पलक मारते हीं अन्त को प्राप्त हो जाता है।

बाहर खडा सन्तरी खडे ही खडे ऊँघ रहा था और झरोखे से आकर चाँदनी एक दीवाल पर पड़ रही थी। अनन्त रेशम का ध्यान आते ही घबडा गया। वह अधीर हो काँपने लगा और सोचने लगा कि बहुत ही कोमल और अत्यन्त सुकुमार थीं रेशम; फूल जैसी, अब तो मुरझी गई होगी। कैसा निर्दय व्यापार है कि कली लिकसित होने

के पूर्व ही मुर्झा गई। कैसा निर्दय व्यापार है कि कली विकसित होने के पूर्व ही मृतप्राय हो गई। फिर भला उसे धराशायी होने में कितनी देर लगेगी। वह इस रईस जमीदार की बेटी है और थी अपने पीहर से लेकर ससुराल तक सबकी दुलारी-लाडली। पता नही अब कैसी होगी ?

कितनी धूमधाम से हम दोनों का ब्याह हुआ। सुखी दाम्पत्य जीवन बीत रहा था। कूनी और केशव ने आकर उसकी गोद भर दी और वह माँ के कर्त्तव्य का पालन करने लगी। मैं बहुत प्रसन्न था। रेशम घर की ज्योति थी और सभी मुदित थे; लेकिन शैतान अपने पंजे फैलाकर आँगन में आ खड़ा हो गया। उस दिन रात बहुत अँधेरी थी। आसमान पर बादल छाये हुये थे और अगहन की कड़ी शीत में धीमी–धींमी बूँदे पड़ कलेजे को कपाँ रही थी। वायु तीर की भाँति पैनी होकर बह रही थी। बदन में छूते ही ऐसा लगता जैसे किसी ने देह चीर दी हो। मेरी माँ और चाची (रामेश्वर की पत्नी) का देहान्त पहले ही हो गया था। परिवार में चाचा थे, उनका अविवाहित युवा पुत्र युगुल और मेरा परिवार। मैं पिता जी के बराबर वाले कमरे में रहता था और रात को लेटता भी वहीं था। किन्तु तीन-चार दिन से वे ज्वर-ग्रस्त थे। इसलिये मैं उनके कमरे में ही सो जाता था। उस रात को मैं वहीं सोया था। सहसा गुडम–गुडम की दो भयानक आवाजे हुई। मैं हडबडा कर उठ बैठा। पिता जी कबूतर की भाँति फर्श पर लुढके पड़े थे। मत्थे से लेकर सीने तक वे खून से नहा गये थे और सामने खडे चाचा मेरी ओर खूँख्वार दृष्टि से घूर रहे थे। कहीं मैं शोर न मचा दूँ इस भय से पिस्तौल का घोड़ा साधते हुये वे मेरे सामने आ खड़े हुये। कुछ क्षण तक गम्भीरता पूर्वक उन्होंने विचार किया। फिर शायद यह सोचकर मुझे मार डालने का इरादा बदल दिया कि ऐसी स्थिति में उन पर और उनके पुत्र पर आफत आ

सकती है। उन्होंने पिस्तौल मेरी चारपाई पर फेंक दिया और कमरा बाहर से बन्द कर थोड़ी देर बाद पुलिस के साथ उपस्थित हो गये। मैं बन्दी बना लिया गया।

ओफ! उसके बाद गर्दिश का चक्कर ऐसा चला कि चलता ही गया। मुकदमा सेशन सुपुर्द हुआ। चाचा जी चश्मदीद गवाह थे। उनका कहना था कि फिजूल खर्ची के मामले को लेकर जब पिता जी ने मुझको डाँटा तो मैंने उन्हें क्रोध में आकर गोली मार दी। उस समय वे उन्हें दवा पिलाने आये थे। मैंने सोच लिया कि अब फाँसी तो होगी ही। स्त्री-बच्चों के लिये मुझे कुछ समय चाहिये। मैं जेल से भागने की सोचने लगा। यह अपराध मैं रेशम, कूनी और केशव के लिये कर रहा था; क्योंकि कर्त्तव्य पहले था और मैं इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये पागल हो रहा था कि किसी प्रकार बच्चे सयाने और समर्थ हो जाँय। तब तक मैं फरार ही बना रहूँ। इसके बाद मौत का मैं स्वयं ही सहर्ष स्वागत कर लूँगा। लेकिन नाव बीच ही में डूब गई। मैं दूसरे-तीसरे महीने कल्पित नाम से कभी युगुल और कभी रेशम के नाम मनीआर्डर द्वारा रुपया भेज देता था। वही रेशम के लिये जीविका का साधन था। एक दिन मैं अवसर पाकर जेल से भाग निकला था और जब उसके बाद एक रात को चोरों की भाँति रेशम से मिला तब उसने बताया कि चाचा ने उसे एक अलग मकान में रक्खा है। वे अब रोटी–कपडा भी नही देते हैं। मेरे नाम वारन्ट था अतः भारतीय विधान धारा सतासी और अठ्ठासी के अन्तर्गत पुलिस ने रेशम को न जांने कितना परेशान किया होग। इसलिये मैं युगुल को रुपये भेज देता था। वह मेरा विश्वास पात्र है। उम्र में मुझसे पाँच-छै साल छोटा है। वह मेरा बहुत लिहाज करता। मैं उसे चचेरा भाई नही वरन अपना सगा भाई समझता था। जब उसे मेरी गिरफ्तारी का पता लगेगा तो वह जमीन आसमान एक कर देगा। लेकिन

बंसरी .... ।

सहसा अनन्त चौंक गया और उसके सामने बंसरी का चित्र नाचने लगा। वह अस्फुट स्वर में बुदबुदाने लगा— "बंसरी मानवी नहीं देवी है। मेरा सिर उसके सम्मुख नहीं उठ सकेगा। काश! मेरी आँखे फूट जाती और मैं अन्धा हो जाता। फिर मुझे किसी के सामने खड़े होने में तनिक भी हया नही लगती। लेकिन तकदीर!" उसके मुँह से एक गरम उसास निकल पडी और तभी जेल का घन्टा यकायक घनघनाकर बजा और उस पर पाँच चोटे पड़ीं। बसन्त उठकर खड़ा हुआ। एक क्षण के लिये उसने आँखे बन्द करलीं। तभी उसे अनुभव हुआ कि उसका अन्त अंधकार में है और मृत्यु का निमंत्रण मिल चुका है।

———

१४

प्राय: ऐसा देखा जाता है कि लड़का युवा होने पर बाप से असन्तुष्ट हो उसका विरोध करने लगता है। यह घटना उस उत्तरदायित्वहींन पिता के साथ घटती है जो स्वयं तो अनींति पर चलता ही है और पुत्र को भी उसी सूत्र में बाँधने का प्रयत्न करता है। यही कारण है विरोध का। ऐसी ही स्थिति थी रामेश्वर की। पैंतालिस साल की उम्र होने पर भी उनका गठीला शरीर चुस्त बना हुआ था। सिर के एक बाल पर भी सफेदी नही दौड़ी थी। उनका चेहरा-मोहरा ठीक अपने भाई की तरह था जो अनन्त से मिलता जुलता था। वह बहुत ही लालची प्रकृति का था।

और युगुल था तेईस-चौवीस साल का जवान हट्टा-कट्टा। उसकी मुखाकृति भी अनन्त के ही अनुरूप थी। वह स्वभाव का मृदुल और हृदय का उदार था। फैशन करने की उसकी आदत न थी। सादे कपड़ो ही का उसका लिबास था। वह विज्ञान का ग्रेजुएट था। किन्तु बहुत ही सींधी चाल चलता। रेशम का दुख उससे देखा न जाता था। जब बाप ने उसको घर से अलग कर दिया यह आड़ लेकर कि तुम्हारे पीछे मेरे घर में रोज-रोज पुलिस घुसेगी इससे बेहतर है कि तुम अलग रहो। खाना खर्चा मैं दूँगा तब उस दिन बाप-बेटे में खूब कसकर वाक् युद्ध हुआ।

रेशम ने युगुल को बहुत समझाया कि वह बाप से न उलझे। बड़े अगर एक बार भूल भी कर रहें हो तो छोटों का बाधा नहीं देनी चाहिये। युगुल सिर झुका-कर उसकी बातों को सुनता रहा और रेशम देर तक उसे सहन करने का मंत्र सिखाती रही।

रेशम बहुत दुखी थी। पाँच साल से अनन्त भागा हुआ था। इस बीच वह सूखकर काँटा हो गई थी। सत्ताइस- अट्ठाइस वर्ष की उम्र ही में लगता था कि वह बुढ़िया हो गई है।

पूस के जाड़े की एक सर्दी भरीं रात में रेशम एक कम्बल में दोनों बच्चों को लपेटे, स्वयं धोती ओढ़े, ठंड से काँप रही थी। कमरे में मिट्टीं के तेल की कुप्पी जल रही थी और वह आँसू बहा रही थी। सहसा किवाडों पर दस्तक हुई और युगुल का परिचित स्वर सुनाई पड़ा—"भाभी।"

रेशम आँसू पोंछतीं हुई उठी और कुन्डी खोल आई। युवक युगुल हाथ में दो झोले लटकाये जो खाने-पीने की अवश्यक वस्तुओं से भरे थे, कमरे में प्रविष्ट हुआ यह देखते ही रेशम उसको मीठी डाँट बताती हुई बोली–"यह क्या करते हो लाला? मैं नहीं चाहतीं कि मुझको लेकर तुम बाप-बेटों के बींच में झगडा बढ़े और मनो मालिन्य पैदा हो। चाचा (रामेश्वर) मुझे जो भी दस-पाँच रुपये खर्च के लिये दे देते हैं वे ही मेरे लिये काफी हैं। मैं जानती हूँ कि तुम्हें बच्चों से बहुत प्रेम है; लेकिन अपने भविष्य पर कुठाराघात न करो। चाचा नाराज हो जायेंगे तो ... . ।"

"तो मैं भूखों मर जाऊँगा। वही न भाभी। तुम बड़े कच्चे हृदय की हो।" हँसकर युगुल ने कहा और फिर पुआल पर बैठा हुआ बोला—"कूनी और केशव के लिये मैंने ग्वाले से कह दिया है, वह सवेरे-शाम दूध दे जाया करेगा। और जो कुछ ये थोड़े से रुपये हैं बच्चों को किसी तरह का कष्ट न हो। इसका ध्यान रखना। बड़ा जरूरी है।" यह कहने के साथ उसने रुपये रेशम के सामने रख दिये।

रेशम यकायक कुछ भी नही बोल पायी। वह हैरान दृष्टि से

उसकी ओर निहारने लगी फिर धीरे-धीरे संमत स्वर में बोली—"लाला दुनिया बड़ी बेरहम है। वह किसी के साथ रियायत नही करती। बाप तो केवल तुमको इसलिये बुरा कहेगा कि तुम उसकी अवाज्ञा करते हो और दुनिया लोधन लगाकर ही रहेगी। क्या बदनामी के उस टोकरे को उठा सकोगे युगुल ? मैं सबसे पहले तुम्हारा हित चाहती हूं। लाला ! बोलो ! जवाब दो।"

युगुल छूटते ही बोल उठा—"दुनिया से वे लोग डरते है भाभी जो झूठी दुनियादारी का चोंगा पहने होते हैं। सत्य से इन्सान को कभी नहीं डरना चाहिये। इन छोटी-छोटी बातों को न सोचा करो।"

"कैसे न सोचूँ लाला ! मुझ पर दैवी मार पड़ रही है और उस पर भी यदि फूँक-फूँक कर भी कदम न रक्खूँ तो कहाँ जाऊँ ?" रेशम की आँखों से आँसू बहने लगे और युगुल के भी नेत्र द्वय आर्द्र हो आये।

× × ×

रेशम को जब अनन्त का पहला मनीआर्डर मिला तो कई दिन तक पुलिस उसके घर पर घेरा डाले पड़ी रही। और दूसरा आते ही वह खून के आँसू रोई। अपनी दुर्दशा पर वह मन-ही-मन ईश्वर से प्रार्थना करने लगी कि अब भविष्य में वे (अनन्त) मुझे रुपये न भेजें तो अधिक अच्छा हो।

युगुल पुलिस की आसुरी वृत्ति से काँप उठा। वह रेशम के प्रति सोचने लगा कि कहीं उसको दिक न हो जाय तो छोटे-छोटे बच्चे अनाथ बनकर भटकते फिरें ?

लेकिन समय-चक्र अपनी कीली पर सीधा घूम रहा था। उसकी गत्ति को कौन रोक सकता है।

१५

रामेश्वर ने जब एक दिन यह सुना कि युगुल के नाम मथुरा से एक अपरिचित नाम से मनीआर्डर आया है और वह उसे रेशम को दे आया तो वे आग बबूला हो उठे। युगुल रेशम के घर से आ रहा था। वे आँगन में पैर रखते ही उससे गरजकर बोले —"कहाँ गये थे नवाब साहब। मालूम होता है कि अपने साथ ही मुझे भी जेल भिजवाओगे। मैं सब जान गया हूं। यह भी अनन्त की एक चालाकी है जिसमें रेशम पर आँच न आये और तुम आफत में पड़ो।"

युगुल जवाब के लिये पूर्णतया प्रस्तुत था। वह गरम होकर बोला—'आप तो हमेशा अपने ही स्वार्थ की बात सोचते हैं। कभी दूसरों की ओर भी आँख उठा कर देखा है? यह आप के ही बेले हुए पापड़ हैं, जिन्हें बनाते चबाते अनन्त के जबड़ों से खून बहने लगा और अब मौत उसका इन्तजार कर रही है। आप ।"

"तुम्हारी जबान बहुत बढ़ गई है युगुल। मैं क्या तुम्हारा अहित चाहता हूँ मन नहीं मानता है तो कहता हूं। लेकिन तुम अंगारो पर पैर रखने लगते हो। लाख बार कहा कि रेशम के घर न जाया करो; क्योंकि एक तो उसमें हम लोगों को पुलिस हैरान करेगी और दूसरे मुझे अगले साल तुम्हारा ब्याह करना है। काजल की कोठरी में जाओगे तो एक लीक ज़रूर लगेगी और यह दुनिया का दस्तूर है कि रस्सी का साँप बनकर बदनामी बहुत जल्द फैल जाती है। तुम ।"

"क्या कहा आपने रेशम काजल है और उसका घर मेरे

लिये काजल की कोठरी ? शर्म नहीं आती आपको ! आप उसके पिता तुल्य हैं। इतनी बर्बरता न कीजिये। दुनिया में अभी ईमान जिन्दा है। ओफ ......।"

"नालायक ! जबान लड़ाता है।" कहने के साथ रामेश्वर का हाथ युगुल के मुँह पर पड़ गया।

युगुल ने सिर नीचे झुका लिया और चुपचाप घर से बाहर निकल गया।

रेशम ने जब यह सुना तो दोनों बच्चों को गले से लगाकर खूब रोई। उसने उसी समय यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि युगुल से समझाकर कह देगी कि मेरे और बच्चों के लिये चाचा को नाराज न करो युगुल ! बाप स्वर्ग से भी ऊँचा होता है।

इसके बाद रोते-रोते रेशम जब थक गई तो लम्बी सांस भर कर सोचने लगी कि जब मनुष्य आपत्ति ग्रस्त होता है तो दुनिया उस स्वर्ग को मिट्टी के मोल भी खरीदने को तैयार नहीं होती। तकदीर जो न कराये वह थोड़ा है। काश ! यह धरती फट जाती और इसमें समा जाती मैं, दुनिया के सारे झँझटों से छूटकर सदा की नींद सो जाती। लेकिन यह सम्भव कहाँ ? आदमी तो घुट-घुट मरने के लिये पैदा हुआ।

इस प्रकार रेशम घोर निराशा से भर आई। और निराश

आकाश भी चन्द्रमा की राह देखते–देखते थक कर तारों की क्षीण ज्योति को लख कर दीर्घ उच्छ्वास लेकर रह गया।

———

१६

लगभग एक सप्ताह तक बाप-बेटे एक-दूसरे से नहीं बोले। फिर धीरे-धीरे स्वयं रामेश्वर की मौन- समाधि टूटी और वे पुत्र को पहले ही की भाँति उपदेश देने लगे। लेकिन युगुल चुपचाप उनकी बातें सुन लेता और कुछ जावाब नहीं देता। वह उनसे अत्यधिक असन्तुट था। इसीलिये उस पर उनकी बातों का किंचितमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ता।

लेकिन रेशम की बातों को युगुल ध्यान से सुनता था और उन पर विचार करना वह आवश्यक ही नहीं, बल्कि अपना कर्त्तव्य समझता था।

दिन ढल आया था और झुटपुटा होते देख गौरैयाँ छत के घोंसलों में घुस विश्राम ले रही थी। रेशम ने कुप्पी जलाई और आँगन में खेल रहे बच्चों को खाना खिलाने के लिये अन्दर बुलाया। इतने में युगुल आ गया। उसके हाथ में दस-दस के तीन नोट थे। समझ गई कि आज फिर उनका (अनन्त) मनीआर्डर आया है और इस बात को लेकर बाप-बेटों में फिर कहा सुनी होगी। वह सहमीं वाणी में उससे बोली—"तुमसे कितनी बार कहा कि मेरे यहाँ बहुत कम आया करो। और तुम मानते ही नहीं। मुझे तो ऐसा लगता है कि दुनिया का मुँह बाद में खुलेगा और प्रपंच की रचना पहले घर में ही हो जायेगी। चाचा मेरे लिये तुमको बदनाम कर सकते हैं। यह शंका मुझको खाये डाल रही है। मैं यह नहीं कहती कि न आओ; लेकिन बहुत कम।"

अन्दर रेशम यह कह रही थी और बाहर दरवाजे पर कान दिये आड़ में खड़े रामेश्वर उनकी बातें सुन-सुन कर जलभुन रहे थे।

उनको अनन्त के भेजे हुये इस मनीआर्डर का भी पता चल गया था जो युगुल के पास आगरे से आया था।

बाहर साँझ की उमस भरी हवा बह रही थी और रामेश्वर दीवाल से कान लगाये खड़े थे। अन्दर नन्हीं सी कूनी आयी और तोतले स्वर में युगुल से लिपटती हुई बोली—"ताता ! पैछे लाओ।"

युगुल ने हरी वायल की फ्राक में लिपटी तीन वर्षीया कूनी को गोद में उठा लिया और उसका मुख चूमता हुआ जेब से पैसे निकाल उनको मुट्ठी में बन्द कर खन-खनाता हुआ बोला—"कितने लेगी ! जल्दी बोल ?"

वह कुछ कहे उसके पूर्व पंच वर्षीय केशव भी युगुल के सामने आकर मचलने लगा—"चाचा हम भी पैसा लेंगे।"

युगुल ने उसको भी गोद में उठा लिया।

रेशम के चेहरे पर उस क्षण हँसी की रेखा दौड़ गयी। लेकिन तत्क्षण ही वह गम्भीर हो आई। वह कहने लगी—"तुमने मेरी बातों का जवाब नहीं दिया लाला ?"

"क्या जवाब दूँ भाभी ? मेरी तो कुछ समझ में ही नहीं आता है। तुम जो कहती हो वैसा न करने के लिये मैं विवश हूं और पिताजी की स्वार्थ नीति का तनिक भी कायल नहीं। वे पैसे में परमेश्वर को देखते हैं और मैं इन्सान में उसकी आत्मा को। मैं अनीति होते नहीं देख सकता और न देख सकता हूँ पाशविक वृति का नग्न नृत्य। पिता जी पिशाच हैं वे तुम्हें और बच्चों को कच्चा ही चबा जायेगें। वह तो मार्ग में रोड़ा मैं हूँ, इसीलिये उनकी एक नहीं चल पाती" एक साँस में ही युगुल यह कह गया।

और बाहर खड़े रामेश्वर क्रोध से तमतमा उठे। लेकिन तत्काल ही वे अपने पर नियंत्रण पा गए और चुप-चाप वहाँ से वापस चल दिये। उन्हें लगता था उनके कान के परदे फटे जा रहे हैं। बार-बार उनके मस्तिष्क में यह ध्वनि टकरा रही थी—"पिताजी पिशाच हैं। वे तुम्हें और बच्चों को कच्चा चबा जायेंगें।"

वे गुस्से से लाल हो उठे और किसी तरह पैर पीटते हुए घर पहुँचे।

रामेश्वर आये और चले गये, इस बात को रेशम और युगुल ने नहीं जान पाया। उन दोनों में बातें चल रही थीं।

रेशम कह रही थी—"बड़ो के लिये आप ऐसे शब्द मुँह से न निकालो लाला! उससे उनका गौरव घटता है।"

और युगुल धीरे से हँस कह जवाब दे रहा था—"गौरव गरिमामय होता है भाभी! वह बर्बर और उच्छृंखल तो नहीं। सीमा के बाहर जो चीज़ निकल जाती है वह अति में बदल जाती है और अति में ही मनुष्य का अन्त निहित है। पिताजी की आयतें ही उनकी दुश्मन हैं। वे कभी सुखी नही रह सकते।"

इस पर रेशम कुछ नहीं बोली और युगुल भी मौन हो गया।

× × ×

पाप मुँडेर पर चढकर चिल्लाता है और फिर हत्यारा तो कायर होता ही है, रामेश्वर अपने प्राण बचाने के लिये अनन्त के सिर पर दोष मढ़कर निश्चिन्त हो गये हों, ऐसा नहीं उनके भाई सोमेश्वर की प्रेतात्म स्वप्न में उनसे धिक्कार-धिक्कार कर कहती कि तू खूनी है।

तूने मेरा खून केवल पैसे के लिये किया है। लेकिन फिर मेरी औलाद की जान का ग्राहक क्यों बन गया! मेरा तूने खून किया, मेरे लड़के को फांसी पर चढाने का सामान बना दिया। और तू! तू क्या बच जायेगा! एक दिन तेरा भेद खुलेगा तब तू अपने आप गोली मार कर मर जायेगा।

रामेश्वर के इस प्रकार के स्वपनों का कभी अन्त नहीं होता और वे बीच हीं में चीख पड़ते। उनकी आँखे खुल जाती।

रेशम के यहाँ से वापस आकर रामेश्वर अत्यन्त क्रोध में होने के कारण अपने कमरे की अन्दर से कुन्डी बन्द कर चारपाई पर जा पड़े। उनका क्रोध युगुल पर कम था और रेशम पर अधिक। युगुल के लिये उन्होंने सोच रखा था कि वह मुझसे तर्क करता है और बाहर समाज में मेरी बुराई। यह सब रेशम का चक्कर है और अब इस समय वे एक दम क्रोध से उबल रहे थे इसलिये सोचने लगे कि मैं रेशम को बदनाम कर दूँगा। इस तरह यह रोड़ा हट जायेगा। इसके बाद अनन्त को होगी फाँसी। तब युगुल अपने आप रास्ते पर आ जायेगा।

विश्व का यह नियम है कि व्यक्ति की बदनामी उसके घर में ही जन्म लेती है। सो ऐसे रेशम और युगुल को पाप लगाने के कुचक्र में रामेश्वर की दो-तीन दिन में पूरी-पूरी सफलता मिल गई। मोहल्ले भर में चख-चख मच गई कि रेशम युगुल पर डोरे डाल रही थी तभी रामेश्वर ने उसे घर से निकाल दिया है। युगुल उसके घर में आधी-आधी रात तक बैठा रहता है जिससे बाप बेटों में कलह मची रहती है। बड़ी-बूढ़ी माथे पर हाथ ठोंक कर कहतीं—"अन्धेर हो गया। नारी-जाति का नाम डुबोदिया रेशम ने। देखने में कितनी भोली लगता है और कर्म ये कि अनन्त भागा हुआ है। वह मौत और जिन्दगी का जुआँ खेल रहा है और यह युगुल के साथ रँगरेलियाँ मना रही।"

इसी तरह बड़े-बूढ़े और छोटे सभी रेशम को भला-बुरा कह रहे थे। लोग युगुल पर छींटे कसते और रेशम को देखते ही स्त्रियाँ मुँह बिचकाकर ताना देतीं—"अरे अब तो कलियुगी स्त्रियाँ पति के मरने से पहले ही अपने लिये दूसरा वर ढूँढ़ लेती हैं।"

रेशम के बदन में काटो तो खून नहीं। उसने यह सब सुनकर निश्चित कर लिया कि अब युगुल से कभी न मिलेगी। शर्म के मारे उसने कई दिन तक घर के किवाड़े ही नहीं खोले। और जब एक दिन आकर युगुल ने किवाड़ खुलवाये तो बिना कुंडी खोले ही उसने उत्तर दे दिया—"तुम्हें मेरी कसम है लाला! मुझे मेरे हाल पर छोड़ दो; क्योंकि बदनामी जिन्दगी का नर्क है। अधिक अच्छा हो यदि हम दोनों उसके बलबलाते कुण्ड में गोते लगाने से बच जायें। सब के मुँह बन्द हो जायेंगे। मेरी बातों का बुरा मत मानना।"

"नहीं भाभी!" युगुल का कण्ठ भर आया था और वह मन-ही-मन रेशम को नमस्कार करता हुआ वहाँ से चल दिया।

और रेशम कटे-वृक्ष की भाँति फर्श पर गिर पड़ी और फूट-फूट कर रोने लगी। दोनों बच्चे सहम गये। और माँ को रोते देख उन्हें भी रुलाई आ गई।

————

१७

कुटिलों की कुटिल बुद्धि का दायरा बहुत संकुचित होता है; लेकिन समझदार मनुष्य की बुद्धि उसकी चाकरी करती रहती है। अब युगुल रेशम के घर नहीं जाता था; मगर उसके सहायता कार्य में तनिक भी बाधा नहीं पड़ने पायी। यह कार्य वह अपने दो–एक विश्वासी मित्रों द्वारा करवा देता था। साल–छे महीने भर लोगों की जबान पर रेशम का नाम रहा फिर सब जैसे उन दोनों की बदनामी वाली बात को भूल ही गये।

अनन्त को फरार हुए पूरे पाँच साल हो गये थे। रेशम पूर्णतया निराशा से भर आइ थी। पीहर में अब केवल बूढी माँ थी जो परि–वार के टुकडों पर पल रही थी। इसलिये मन करने पर भी वह इस बीच में वहाँ न जा सकी। इसके अतिरिक्त यह घर छोड़कर वह जाती भीं कहाँ। कहीं भो सिर छिपाने की जगह न थी। वह अब तक इस आशा पर जीवित रही कि एक दिन अनन्त अवश्य आयेगा और उसको अपने साथ लेजाकर कहीं खोह या कन्दरा में जा छिपेगा। किन्तु अब ऐसा लगता था जैसे उसकी आशा का तार टूट रहा हो।

फागुन को उजेली रात थी और रेशम आँगन में बैठी नीले शून्य की ओर दृष्टि दिये सोच रही थी कि कितना बड़ा है यह संसार; लेकिन इसमें मेरे लिये कोई सहारा नहीं। सहारा भाग्य ने छीन लिया है। पता नहीं अब वे (अनन्त) कहाँ होंगे ?

इतने में एक तारा टूटा और उसकी डोर दूर तक भूल आई। रेशम ने यह देखा उसने आंखे मूंद ली। वह गुप्त भय की आशंका से पति के मंगल की कामना करने लगी।

सहसा किवाड़ों पर जोर की थपथपाहट हुई और बहुत दिनों बाद रेशम ने सुना युगुल का परिचित स्वर। वह चिल्लाकर कह रहा था —"भाभी! दरवाजा खोलो! ग़जब हो गया!"

"क्या कहा लाला? क्या बात हो गई?" व्यस्त स्वर में अत्यन्त घबराहट के साथ पूछती हुई रेशम ने कुन्डी खोल दी।

उसको सामने देखते ही युगुल उदास हो गया और रूआसा होकर बोला —"अनन्त भय्या कल रात को लखनऊ में गिरफ्तार हो गये। मैं अभी इसी समय वहाँ जा रहा हूं। तुम यह बात अपने तक ही रखना। यूँ तो फिर दो-चार दिन में सब चख-चख मच ही जायेगी।

"हाय! मैं लुट गई। अब मैं क्या करूँगी लाला?" कहकर अधीर रेशम युगुल के कन्धे पर सिर टेककर रोने लगी और युगुल उसे ढाढस बँधाने लगा।

× × ×

रात को दस बजे के बाद कानपुर से लखनऊ जाने के लिये कोई भी यातायात का साधन उपलब्ध न होने के कारण युगुल टैक्सी करके लखनऊ पहुंचा।

और रेशम आंगन में आ खुले आकाश के नीचे बैठकर आंसू बहाने लगी।

१७

कुटिलों की कुटिल बुद्धि का दायरा बहुत संकुचित होता है; लेकिन समझदार मनुष्य की बुद्धि उसकी चाकरी करती रहती है। अब युगुल रेशम के घर नही जाता था; मगर उसके सहायता कार्य में तनिक भी बाधा नहीं पड़ने पायी। यह कार्य वह अपने दो–एक विश्वासी मित्रों द्वारा करवा देता था। साल–छे महीने भर लोगों की जबान पर रेशम का नाम रहा फिर सब जैसे उन दोनों की बदनामी वाली बात को भूल ही गये।

अनन्त को फरार हुए पूरे पाँच साल हो गये थे। रेशम पूर्णतया निराशा से भर आइ थी। पीहर में अब केवल बूढी माँ थी जो परि–वार के टुकडों पर पल रही थी। इसलिये मन करने पर भी वह इस बीच में वहाँ न जा सकी। इसके अतिरिक्त यह घर छोड़कर वह जाती भीं कहाँ। कहीं भो सिर छिपाने की जगह न थी। वह अब तक इस आशा पर जीवित रही कि एक दिन अनन्त अवश्य आयेगा और उसको अपने साथ लेजाकर कहीं खोह या कन्दरा में जा छिपेगा। किन्तु अब ऐसा लगता था जैसे उसकी आशा का तार टूट रहा हो।

फागुन को उजेली रात थी और रेशम आँगन में बैठी नीले शून्य की ओर दृष्टि दिये सोच रही थी कि कितना बड़ा है यह संसार; लेकिन इसमें मेरे लिये कोई सहारा नहीं। सहारा भाग्य ने छीन लिया है। पता नहीं अब वे (अनन्त) कहाँ होंगे ?

इतने में एक तारा टूटा और उसकी डोर दूर तक भूल आई। रेशम ने यह देखा उसने आँखे मूँद ली। वह गुप्त भय की आशंका से पति के मंगल कीं कामना करने लगी।

सहसा किवाड़ों पर जोर की थपथपाहट हुई और बहुत दिनों बाद रेशम ने सुना युगुल का परिचित स्वर। वह चिल्लाकर कह रहा था —"भाभी! दरवाजा खोलो! ग़जब हो गया!"

"क्या कहा लाला? क्या बात हो गई?" व्यस्त स्वर में अत्यन्त घबराहट के साथ पूछती हुई रेशम ने कुन्डी खोल दी।

उसको सामने देखते ही युगुल उदास हो गया और रूआसा होकर बोला —"अनन्त भय्या कल रात को लखनऊ में गिरफ्तार हो गये। मैं अभी इसी समय वहाँ जा रहा हूं। तुम यह बात अपने तक ही रखना। यूँ तो फिर दो-चार दिन में सब चख-चख मच ही जायेगी।

"हाय! मैं लुट गई। अब मैं क्या करूँगी लाला?" कहकर अधीर रेशम युगुल के कन्धे पर सिर टेककर रोने लगी और युगुल उसे ढाढस बँधाने लगा।

× × ×

रात को दस बजे के बाद कानपुर से लखनऊ जाने के लिये कोई भी यातायात का साधन उपलब्ध न होने के कारण युगुल टैक्सी करके लखनऊ पहुंचा।

और रेशम आंगन में आ खुले आकाश के नीचे बैठकर आंसू बहाने लगी।

———

१८

रात-ही-रात युगुल ने पता लगाकर बंसरी की कोठी पर जा अपना परिचय दे, उससे अनन्त के विषय में सारी जानकारी प्राप्त कर ली।

बंसरी ने बताया कि अभी उसे ज्वर है, अतः स्वस्थ होने पर ही जमानत की वयवस्था हो सकेगी।

इस पर युगुल उसके यहाँ रुक गया और बंसरी के ज्वर मुक्त होने की राह देखने लगा।

पूरी रात और सारा दिन डाक्टर पर डाक्टर दौड़ते रहे तब कहीं जाकर बंसरी अब तनिक शांत हो पायी थी।

तीन दिन बीते; अब बंसरी उठकर चलने-फिरने लगी थी। युगुल और उसने कई दिन तक काफी दौड़ धूप की; मगर अनन्त की जमानत नहीं हो सकी। हार मान कर बंसरी बैठ रही और युगुल वापस चला आया।

× × × × ×

घर में रामेश्वर खार खाये बैठे थे। वे उसे देखते ही उबल पड़े—"आ गये! मेरी गाथा करने गये थे क्या?

"आप जो भी समझें।" युगुल ने उपेक्षा-पूर्वक जवाब दिया और फिर अपने कमरे में जाने लगा तो आगे बढ़कर रामेश्वर उसका रास्ता रोक गरम स्वर में बोले—"निकल जाओ। अब इस घर में तुम्हारा कोई काम नहीं है। मैं अपने खून से तुम्हारी जड़ों को सींच

रहा हूँ और तुम अपने हाथों उन पर तेजाव छिड़क रहे हो। जहन्नुम में जाओ। मुझ से कोई मतलब नहीं। मुझे तुम्हारी शक्ल से नफरत हो गई है।"

"बहुत अच्छा! यह तो एक दिन होना ही था।" कहने के साथ युगुल घर से बाहर निकल गया और रामेश्वर की आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं।

उस समय दोपहर थी और फागुन की हल्की धूप यत्र-तत्र नगर के पथों पर बिछ रही थी। युगुल चला जा रहा था एक दम सीधा। उसकी मंजिल अज्ञात थी। गुलाबी जाड़े–भरी हवा उसके बदन को स्पर्श कर रही थी और उसकी गति में वेग समा रहा था।

————

१६

युगुल अधिक देर तक भ्रान्ति में भूला नहीं रहा। वह पीछे लौट पड़ा और रेशम के पास जाकर कहने लगा—"अब कोई झंझट नहीं रहा भाभी ! पिताजी ने मुझे हमेशा-हमेशा के लिये छुट्टी दे दी है।"

इस पर चौंकती हुई रेशम पूछ बैठी—"क्या बात हुई लाला ? मैं समझी नहीं।"

"पिता जी ने मुझे घर से निकाल दिया है। इसमें उन्होंने अनेक लाभ सोचे होंगे। जैसे एक तो उनका पैसा पानी की तरह खर्च होने से बच जायेगा। दूसरा यह कि जब मेरा हाथ खाली हो जायेगा, तो मैं मुकदमें की पैरवी नहीं कर पाऊंगा। ऐसे ही बहुत कुछ सोच रखा होगा उन्होंने।"

युगुल कह रहा था और रेशम उसकी ओर चित्र-लिखी भीता हिरणी की भांति देख रही थी। वह बता रहा था—"पैसे की मुझे तनिक भी चिंता नहीं भाभी। वह तो आदमी के हाथ का मैल है ! मैं परिश्रम से पैसा कमा सकता हूँ; लेकिन इसकी जरूरत नहीं पड़ेगी। यह ......।"

"फिर काम कैसे चलेगा लाला ?" रेशम ने उसको बीच में ही टोक दिया।

इस पर युगुल विपत्तावस्था में भी मुस्करा उठा और कहने लगा—"तुमको पहले ही बताया था कि बंसरी ने मुझे लखनऊ में अदालत और जेल की दौड़-धूप करने में एक पैसा भी खर्च नहीं करने

दिया। हाँ। तब यह जरुर था कि मेरा हाथ खाली नहीं था। वह मुकदमें की पैरवी में कुछ उठा नहीं रक्खेगी; क्योंकि वह स्वयं अन्नत भय्या से अधिक श्रद्धा रखती है।"

"गाय का भी राम होता है और कसाई का भी। चलो एक सहारा तो मिला।" रेशम के मुँह से मरे हुये स्वर में धीरे से निकला।

युगुल ने जब उसको उदासी में डूबा देखा तो वह सान्त्वनापूर्ण शब्दों में कहने लगा—"तुम तनिक भी चिन्ता न करो भाभी! यदि भय्या निर्दोष हैं तो वे छूटकर ही रहेगें। ईश्वर के दरबार में देर है, अन्धेर नहीं। मैं लखनऊ जा रहा हूँ। बंसरी को साथ लेकर जेल में भय्या से मिलूँगा। और इसके अलावा अब मैं पूर्णतया स्वतन्त्र भी हूँ। दो-तीन दिन में लौटूँगा। यह कहने के साथ वह वहाँ एक क्षण भी न ठहरा और घूमकर चल दिया।

× × × ×

बंसरी ने अनन्त के प्रति बहुत देर तक सोचा और अन्त में यह निष्कर्ष निकाला कि वह सर्वथा निर्दोष है। उसने मेरे साथ कोई छल नहीं किया। यह मैं अच्छी तरह से जानती हूँ कि यदि मौत और जिन्दगी का भेद न होता तो वह मुझे अवश्य बता देता। क्या करूँ मेरे तो सभी अस्त्र बेकार हो गये हैं? काश! मैं उसे फाँसी से बचा पाती।

ऐसे ही बंसरी अनन्त के प्रति पश्चाताप से भर जाती घंटों उसी विचार धारा में खोई रहती।

और जब युगुल बंसरी के पास खाली हाथ आया तो वह

प्रसन्न होकर बोली—"युगुल बाबू आप मेरे अतिथि हैं आप निस्संकोच यहाँ रहिये।"

लेकिन युगुल आत्म सन्तोषी व्यक्ति था। वह खूबसूरती के साथ बोला—"उसका प्रश्न ही नहीं उठता है। मुझे स्वयं कुआँ खोदकर ही पानी पीने से तृप्ति होती है और फिर मैं आपको गैर कब समझता हूँ। आपने अनन्त भय्या पर जो अहसान किये हैं उनके लिये मैं जीवन पर्यन्त आपका आभारी रहूंगा।"

"जिसे आप अहसान कहते हैं उसे मैं इन्सानियत का फर्ज समझती हूँ। ऐसा कहकर आप मुझे शर्मिन्दा न करें।" कहने के साथ बंसरी की दृष्टि बरबस ही उसके उदास–मुख पर जाकर अटक गई और वह प्रसंग बदल कर कहने लगी—"कल प्रातः जेल चलना है। स्वीकृति मैंने पहले से ही ले रखी है।"

'अच्छा" कहने के साथ युगुल के उदास आनन पर मुस्कराहट दौड़ गयी।

देर तक दोनों में बातें होती रहीं। इस बीच में अनन्त के घर का सारा कच्चा चिट्ठा बंसरी ने सुन लिया और दुःख के अथाह सागर में उछलने–डूबने लगी।

× × × ×

अनन्त की दृष्टि सबसे पहले युगुल पर पड़ी। प्रसनन्ता से उसकी बाछें खिल उठी। लेकिन जब उसने बंसरी को अपनी ओर आते देखा तो उसका सिर बरबस नीचे झुक गया। शिष्टाचारवश उसने दोनों हाथ तो उसकी ओर जरूर जोड़ दिये; लेकिन मुँह से एक शब्द भी नहीं निकाल पाया।

बंसरी मौन खड़ी रही। उसने देखा कि अनन्त की दाढ़ी बढ़ आई है और सिर के बाल कनपटियों तक।

युगुल ने अनन्त को पाँच साल बाद देखा था। वह यकायक उसको पहचान नहीं पाया। लेकिन बंसरी मुझसे कोई प्रश्न न कर बैठे इस भय से अनन्त युगुल की ओर उन्मुख हो कहने लगा—"कहो अच्छी तरह रहे युगुल ?"

तब युगुल भर-भराकर भाई के पैरों पर गिर पड़ा और रोते-रोते बोला—"भय्या ! अब सर्वनाश हो जायेगा। रेशम भाभी पागल हो जायेंगी। तुम न पकड़े जाते तो अच्छा था।"

अनन्नत की भी आँखें भर आई। उसने युगुल को उठाकर गले से लगा लिया। फिर समझाता हुआ बोला—'ऐसा पागलपन नहीं करते युगुल। मौत अपने साथ बहाना लेकर आती है। एक बार कानून का उल्लंघन कर मैंने बचने की कोशिश की; किन्तु सब व्यर्थ रहा। भला कहीं संसार में होनहार से बलवान कोई वस्तु रही है ! सन्तोष करो भाई ! जो होना है, वह होकर रहेगा।"

युगुल सिसक रहा था और अनन्त अपने हाथों से उसके आँसू पोछ रहा था। अब भी बंसरी जड़ बनी खड़ी एकदम जैसे गूँगी और बहरी।

दोनों भाइयों में, जब तक मिलाई का समय पूरा नहीं हो गया बातें होती रहीं। फिर जब बंसरी बिदा होने लगी तो उसने चलते-चलते अनन्त से संक्षिप्त में दो एक प्रश्न किये जिनका उत्तर अनन्त ने थोड़े शब्दों में ही दे दिया।

———

२०

प्रति व्यक्ति जब अपने सगे-सम्बन्धियों के बीच में पहुंच जाता है तो वह कुछ क्षण के लिये अपने दुखों को भूल जाता है। दुनिया का दस्तूर है कि न कोई किसी को कुछ देता है और न कोई किसी से कुछ ले ही लेता है। सच्ची सहनुभूति पाकर मनुष्य गद्-गद् हो जाता है। तब उसके ज्ञानतन्तु खुल जाते हैं और वह शाँति पूर्वक अपनी समस्या पर सोचने की क्षमता पर सन्तुष्ट हो जाता है। ऐसे ही अपने प्रति अनन्त सोच रहा था कि अब मैं निश्चिन्त हूँ। जहाँ मुझे कल फाँसी होती हो वहाँ आज हो जाय। मुझे विश्वास है कि युगुल के रहते रेशम और बच्चों को तनिक भी तकलीफ़ नहीं हो सकती। और बंसरी वह तो इन्द्र की कामधेनु है। भला उस गाय के रहते मेरे बछड़े भूखे रह सकते हैं! बस, अब केवल एक इच्छा हैं मेरी कि एक बार अपने कलेजे के टुकड़ों को देख लूँ। उनको सीने से लगाकर अपना वात्सल्य बहा लू; क्योंकि मैं बाप हूँ और हूँ पति भी ऐसी नारी का जो जुही की कली है; लेकिन दुर्भाग्य काँटोंसे ने उसके हृदय को छेद-छेदकर छलनी बना दिया है। अगले सप्ताह युगुल आयेगा तब उससे कहूँगा कि एक बार मुझ बदनसीब को मेरे परिवार से मिला दो।

अब अनन्त की आँखे भर आई थीं और आँसू ढुलक कर गालों पर आ गिरे। सहसा उसका अन्तःकरण कचोट उठा और वह स्वयं अपने पर ही खीझ उठा कि अरे यह क्या हो गया मुझे? जिस समाई से अब तक काम लिया वह अब कहाँ चली गई? आज मेरी समझ में आया कि इन्सान क्यों डरता है मौत से। मुझे मोह सता रहा है, इसीलिये मौत भयभीत करने को आ पहुंची है। मैं यह पहले से ही जानता था कि एक दिन पुलिस के चँगुल में अवश्य फँसना होगा। लेकिन यह

चिन्ता होने पर भी कि रेशम और बच्चों का क्या होगा मैं मृत्यु के लिये सहर्ष प्रस्तुत था; मगर आज जब उस ओर से पूर्णतया निश्चित हूँ तो फिर यह दुर्बलता क्यों ?

एक सप्ताह बाद युगुल और बंसरी जब अनन्त से मिलने आये तब उसने रेशम को देखने की इच्छा प्रगट की। युगुल ने उसकी इच्छा को आदेश समझ सिर आँखों पर लिया और दूसरे ही दिन कानपुर आकर रेशम को लिवा ले गया।

बंसरी रेशम से इस भाव से मिली कि रेशम उसके प्रति श्रद्धा से भर आई। और थोडी देर के सम्पर्क में ही उसको यह अनुभव होने लगा कि बंसरी उसकी सगी बहन है और दोनों जन्म से लेकर अब तक साथ ही साथ रही हैं।

चैती बयार डोल रही थी और धरती से गरम साँस निकलकर उससे संगम कर रही थी। छत अभी थोडी देर पहले ही धोई गई थी; लेकिन फिर भी उससे भभक निकल रही थी।

युगुल अभी उसी कमरे में लेटा था जिसमें अनन्त रहता था। और रेशम लेटी थी छत पर बंसरी की चारपाई के पास। उसकी चारपाई के साथ ही एक पलंग और पड़ा था जिस पर दोनों बच्चे सो रहे थे। शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी का गोल थाली जैसा दूधिया चांद तारों पर शासन करने के लिये अम्बर में निकल आया था। बंसरी को यह मौसम कुछ सुहावना लगा और रेशम की ओर देख, सहज स्वर में कहने लगी—"रेशम बहन, यह निर्मल चांदनी कितनी सुखद है। जी चाहता है कि हमेशा यही जुन्हाई छाई रहे और मैं सन्तोष रूपी अमृत का पान करती रहूं।"

"लेकिन यह सम्भव कैसे हो सकता है? यह तो विधि के हाथ में है

मुझे ही देख लो, क्या थी और क्या हो गई हूँ।" रेशम यह कहते-कहते उठकर बैठ गई।

और बंसरी समझ गई कि इस समय रेशम इतनी दुखी है कि उसे दूसरे की बात सुनने की फुरसत मिलना तो दूर रहा मरने तक की छुट्टी नहीं है। मैंने यह सोचा था कि इस प्रकार थोडा-सा मनोरंजन हो जायेगा और इस दुखिया का मन बहल जायेगा। लेकिन होता वही है जो ईश्वर को मंजूर होता है। चलो कोई बात नहीं। सहानुभूति के लिये उसका समर्थन करना हीं होगा और उसे आश्वासन की डोर में बांधना ही होगा।

वह धीरे-धीरे बोली—"मन को हमेशा एक ही ओर नहीं लगाये रहना चाहिये रेशम। इसका प्रभाव सभी ज्ञानेन्द्रियों पर बहुत बुरा पड़ता है। कभी-कभी हँसने-बोलने का भी प्रयत्न किया करो। ऐसे में तुम थोड़े से क्षणों में अपने दुख को भूल सकती हो। तुम्हारा दुख पहाड़ अवश्य है; किन्तु जहां तक मेरा वश चलेगा मैं उसे पत्ता बनाकर ही रहूंगी।"

बंसरी तत्क्षण ही फिर कहने लगी—"कल प्रातः हम लोग जेल चलेंगे, ज़ी कड़ा कर लो। वहां रोना मत।"

"आंसू नहीं रोक पाती हूँ बहन। वे तो मेरे चिर संगी बन गये हैं। अबला की यही दुर्बलता है।" यह कहते-कहते रेशम की हिल्की भर आई और आंचल से अपनी गीली आंखे पोंछने लगी।

बंसरी रेशम के इस व्यापार पर गम्भीरता-पूर्वक विचार करती हुई शांत स्वर में बोली—"मैं जो साथ हूँ तुम अपने को निर्बल क्यों समझती हो? मैं तुम्हारे आँसुओं को हंसी में बदल दूँगी; क्योंकि बुजुर्गों की यह बात पत्थर की लकीर है कि इन्सान की कोशिश कभी बेकार

नहीं जाती ।"

रेशम बंसरी की इस बात का कुछ भी जवाब न दे पाई तब बंसरी अपने वार्तालाप को दूसरी दिशा में मोड़ ले चली । दोनों देर तक बतलाती रहीं और जब रात भींगने पर आई, तो पता नहीं कब सो गईं ।

× × × ×

सवेरे सूरज की प्रथम किरण फूटते ही रेशम उठी और अनन्त से मिलने के लिये तैयार होकर बंसरी के साथ जेल की ओर चल दी । इस समय उसके चेहरे पर उदासी नहीं थी, थी लालसा पति-दर्शन की और उत्सुकता उसके दो बोल सुनने की ।

———

२१

पहले युगुल कूनी और केशव की उँगली पकड़े हुये जेल में अनन्त के सामने आया। तत्पश्चात बंसरी और रेशम। वे दोनों युगुल के बराबर आ खडी हो गईं। उस समय अनन्त दोनों बच्चों को वक्ष से लगाकर उनका मुख चूम रहा था और बच्चे भी उल्लसित होकर बाप की गोद में किलक रहे थे। रेशम की आँखों में आनन्दाश्रु छलक आये। तभी बंसरी ने धीरे से उसके कान में कह दिया—"जी कड़ा रखो! देखो कहीं आँसू न आ जायें।"

रेशम मुस्करा उठी और सामने दृष्टि जाते ही उसने देखा अनन्त उसकी ओर देखकर मुस्करा रहा है। दम्पति की आँखे चार हुईं। युगुल ने कूनी को गोद में उठा लिया और उसकें अनुकरण स्वरूप बंसरी ने केशव की उँगली पकड़कर स्नेहपूर्वक उसे अपनी ओर खींच लिया।

दम्पति एक दूसरे को देखते रहे और दोनों के मध्य मौन व्यापार पलता रहा। युगुल और बंसरी अलग खडे थे। अनन्त पत्नी के निकट आ प्यार भरी वाणी में पूछने लगा—"तुम्हें मुझसे कोई शिकायत तो नहीं है रेशम?"

"शिकायत! कैसी बातें करते हो तुम?" रेशम ने अपने स्वामी से अतींव सरल भाषा में यह मीठी चुटकी ली।

और अनन्त उसको हँसााना चाहता था। इसलिये कुछ विचित्र प्रकार का मुँह बनाकर कहने लगा—"लेकिन मैंने तुम्हारी एक शिकायत सुनी है।"

"क्या?" रेशम चौंक उठी!

अनन्त उसकी दृग-पुतलियों में झाँकता हुआ हँसोड़ मुद्रा में बोल उठा—"सुना है तुम बहुत रोती हो?"

"उँह। मैं तो समझी कि कोई बहुत बड़ी बात होगी। लेकिन .... ।"

"लेकिन क्या, मैं सच कहता हूँ रेशम, अब तुम रोना मत। तुम्हें मेरी क़सम है। भगवान पर भरोसा करो। यदि दुनिया में इन्साफ जिन्दा है और तुम्हारे नारीत्व में बल है तो मैं हँसते-हँसते फाँसी के तख्ते से उतर आऊँगा। कैसीं सूखकर काँटा हो रही हो? पगली कहीं की। अभी तो मैं हूँ।" कहने के साथ अनन्त का दाहिना हाथ उसके सिर की ओर उठा और चाहा कि उसके सिर पर हाथ फेरकर वह सांत्वना दे। लेकिन सामने खड़े युगुल और बंसरी को देख हाथ पीछे लौट आया। और रेशम उसको धीरे-धीरे अपनी राम कहानी सुनाने लगी।

समय हो गया था। पहरे पर खड़ा जमादार गुर्राकर कहने लगा—"टाइम हो गया। कैदी को हवालात मे ले जाओ।

बैरिक के दरवाजे पर खड़े दो संतरी अनन्त के पास आ गए। वह उनके साथ हवालात की ओर चला और रेशम बंसरी तथा युगुल के बीच में आकर खड़ी हो गई। वह पति को तब तक निहारती रही जब तक अनन्त उसकी दृष्टि से ओझल नहीं हो गया।

× × × ×

बैरिक में आकर अनन्त सोचने लगा कि संताप ने रेशम के शरीर से जोंक बन कर सारा खून चूस लिया है। वह गोरी से काली पड गई है। और शरीर से कृश होने के कारण देखने में बुढिया-सी लगती है।

आज वह बहुत दिन बाद हँसी थी; लेकिन जाते-जाते फिर उदास हो गई। काश! मैं उसके मुख पर से उदासी के बादल हटा पाता।

और रेशम रास्ते भर मौन हो इस सोच-विचार में व्यस्त रही कि वे (अनन्त) मेरे लिये जेल से भागे और घोर तपस्या का जीवन व्यतीत किया। कितने महान हैं वे! अच्छा हो यदि उनके बदले अदालत मुझे फाँसी दे दे। वे कहते थे कि यदि तुम्हारे नारीत्व में बल होगा तो मैं साफ बच जाऊँगा। भगवान लाज रख लेना। यदि मैं मन, कर्म, और बचन से शुद्ध रही हूँ तो मेरे स्वामी का निर्णय दूध-का-दूध और पानी-का-पानीं मे ही हो।

———

२२

लखनऊ जेल से अनन्त का चालन कानपुर जेल भेज दिया गया; क्योंकि उसका मुकदमा कानपूर सेशन कोर्ट से चल रहा था बंसरी बड़े मुनीम पर ज्वैरी की दूकान छोढ़ और प्रेस के मैनेजर पर निर्भर हो रेशम के साथ कानपुर चली आई।

अब युगुल, बंसरी और रेशम तीनों एक साथ ही रेशम के घर में रहते थे। दोनों बच्चे इन लोगों के लिये खिलौने हो रहे थे, जिनसे सबकी सूनी साँसे बहाल वनी रहतीं।

रामेश्वर यह सब फूटी आँखों नहीं देखना चाहते थे। उन्हें भय था कि कहीं भंडा न फूट जाय जो अनन्त के बदले मुझे फांसी पर लटकना पड़े। दिन में बैठे-बैठे वे चौंक पड़ते और उन्हें ऐसा लगने लगता कि सोमेश्र उनके गले में छुरा भौंक कर कह रहें हैं—"तू मेरा हत्यारा है और तू ही मेरे सर्वनाश का कारण। अनन्त को फाँसी हो इसके पहले ही मैं तुझे यमलोक पहुँचा दूगाँ।" और रात में अक्सर क्या, नित्य ही उनको भयंकर से भयंकर सपने दिखलाई पड़ते है और कभी चाकू द्वारा उनका गला काट डालने को उद्यत हो जातें इस प्रकार रामेश्वर अब बहुत ही भयभीत रहने लगे और घर से बाहर निकलना बिल्कुल बंद कर दिया।

युगुल और बंसरी मुकदमें की पैरवी में जी-जान से जुटे थे। दो शहर के नामी वकील खड़े किये गये थे जिनमें एक तर्क-शास्त्र का प्रकाण्ड पंडित था और दूसरा बहस करने अत्यन्त कुशल। कल तारीख थी इसीलिये बंसरी अनन्त से मिलने जेल गई थी।

देर तक दोनों बुत बने खड़े रहे, फिर धीरे-धीरे बंसरी वाचाल

हुई। वह साड़ी के छोर को ऐंठती हुई आर्द्र कण्ठ से बोली—"तुमने मुझे पहले ही क्यों नहीं बता दिया था ? शायद उस समय मैं तुमको कानून से किसी प्रकार मुक्त करवा सकती थी; लेकिन अब सब बेकार है; प्रयत्न हो रहें हैं। आगे भगवान मालिक। तुम्हें देखकर मुझे रूलाई आती है।"

अनन्त ने ऊपर दृष्टि उठाई। उसने देखा बंसरी रो रही है। वह दुखी स्वर में कहने लगा—"मुझे क्षमा कर दो बंसरी। मैंने आपके साथ बहुत छल किया। इसके लिये मैं बहुत शर्मिन्दा हूँ।"

अब उस पागल पन को छोड़ो अनन्त ! और यह बताओ कि तुमने मेरे अन्तर में जो घरव कर दिया है उस पर मरहम लगने से तो रहा। क्या उसमें नमक भरकर रह सकूँगी मैं ? कारा ! तुम छूट जाते तो मैं अपनी जिन्दगी का प्रथम अध्याय आरम्भ करती। लेकिन·····।"

अब बंसरी की वेदना बाँध तोड़कर बह चली थी और अनन्त इस स्थिति में कुछ समय के लिये हतबुद्धि-सा हो गया था। अन्य कोई मार्ग सम्मुख न देखकर वह अपनी बहुत दिनों की रटी हुई मूल बात कहने लगा—"सबसे पहले मैं आपको युगुल को सौंपता हूँ। वह कहीं आवेश में आ इधर-उधर न भटक जाये, इसलिये उसकी गति-विधि की पूर्ण जानकारी रखनी होगी। फिर ··· ।"

"तुम मुमें बारबार आप न कहो। मुझे दुख होता है।" आँसू पोंछती हुई गीले-स्वर में बंसरी ने कहा। और फिर तनिक रुककर पुनः कहने लग गयी—"जिन्दगी का क्या भरोसा। वैसे तुम्हें मुझ पर विश्वास रखना चाहिये। बोलो मेरे लिये क्या कहते हो ?

उत्तर मे दोनों हथेलियाँ रगडता हुआ अनन्त बोल उठा—"अन्धे से राह पूछ रही हो तुम इतनी अस्थिर और भयभीत कैसे हो गई

बंसरी ? जब तुम ही घबरा जाओगी, तो सबके हाथ-पैर फूल जाएँगे। हिम्मत से काम लो ! ईश्वर सबकी मदद करता है।"

"मन को बहुत समझती हूँ। लेकिन अधीर इन्सान जल्दी ही स्थिर नहीं हो जाता। अपनी परिस्थिति पर सोंचते-सोंचते मैं उस परिणाम पर पहुंची हूँ कि अपनत्व-ही मनुष्य के लिये उलझन है मैं उत्तर दायित्व के भार से तो दबी ही थी, साथ ही मोह और ममता ने भी अपना रंगीन जाल फैला कर मुझे बंदी बना लिया है। मैं तो लुट गई अनन्त। मेरे पास अब अपना कुछ भी नहीं रहा। जिन्दगी को मैंने निकट से देखने का जो प्रयत्न किया; उसमें सफलता मिलते हीं एक ऐसे निष्कर्ष पर जा पहुंची हूं जहाँ पर त्याग की वेदीं पर मनुष्य अपने को उत्सर्ग कर देता है। तुमसे मैंने बड़ीं आशा लगा रखी थी कि एक दिन मेरी सोयीं हुई शहनाई के स्वर अपने आप हीं बज उठेंगे। लेकिन व्रजपात हो गया। क्या करूँगीं अपना वैभव लेकर ? जिसने विलास का कींड़ा बन तुमको मुझ से छींन लिया। विलासीं कींड़े तुम्हारे चाचा सुखभोग कर रहे हैं और तुम सच्चे इन्सान थे इसलिए शूलीं तुम्हारा इन्तजार कर रहीं।" बंसरीं का स्वर कुछ थक-सा गया था।" वह ऊब कर साँस लेने लगीं।

अनन्त ने परिस्थिति को सम्हाला। वह अपने पर संयम पाकर बोला—"मन न छोटा करो बंसरीं ! आखिर आदमीं हीं ग़म सहता है। फिर तुम्हें रेशम का भीं ध्यान रखना है। अब तुम्हीं रोओगीं तो उसके आँसू कौन पोंछेगा। सोचो तो बंसरीं।"

बंसरीं कुछ उत्तर न दे पायीं। सहसा जमादार ने आकर टोक दिया—"टाइम खत्म हो गया।"

बंसरीं ने अनन्त कीं ओर देखा और अनन्त कीं उससे चार

आँखे हुईं। दोनों की आँखों से बड़े-बड़े अनमोल मोती टपक कर धरती पर गिर पड़े। और दूसरे ही क्षण अनन्त के पैरों की बेड़ियाँ झनझना उठीं।

× × ×

बंसरी मुर्दा-सी देह लिये कार में आ बैठी और अनमने मन से स्टार्ट कर जुहू हीं की ओर चल दी। यहाँ पर उसकी लखनऊ की एक सहेली थी, जो एक मिल-ओनर के लड़के को ब्याही थी। कार की गति के साथ उसके विचार भाग रहे थे। वे सन्तुलन-हीन थे। और तपते अंगारे जैसे। अहिंसा की पुजारिन बंसरी की आँखों से इस समय क्रोध की विभीषिकएँ निकल रही थीं। वह सोच रही थी कि यह कैसी अनीति है कि गुनाह कोई और करे और उसकी सजा किसी दूसरे को भुगतनी पड़े। अदालतें अन्धी हो गई हैं। अगर मैं इजलास में जाकर यह कहूं कि अनन्त निर्दोष है। कातिल उसका चाचा रामेश्वर है, तो अदालत मेरी बात कभी नहीं सुनेगी। समझ में नहीं आता कि कैसे आवेश को रोकूँ? अनन्त को फाँसी हुई तो मैं प्रलय मचा दूँगी और इस आँखों की अन्धी और कानों की गूँगी दुनिया में आग लगा दूँगी। मैंने हमेशा इस संसार की बुराईयों पर परदा डाला है; लेकिन अब उस परदे को क्रान्ति की मशाल से जला दूँगी। पाप जेल जायेगा, ईमान तपकर कुन्दन बन इन्सान को निखार देगा। तभी मनुष्य जी सकेगा।

बंसरी एक दम विक्षिप्त-सी हो रही थी। हमेशा से दूसरों का हित करने वाली वैभव की पुतली वह आज अपने स्वार्थ पर उतर आयी थी। अनन्त के लिये उसे प्राण देने पर मुक्ति मिल जाती तो वह ऐसा भी कर सकती थी।

और अनन्त बैरिक में आ अभी बैठ भी न पाया था कि जमादार का बूट उसकी पीठ पर पड़ा और वह काँख कर रह गया। उसे

ध्यान आया की अभी उसे डाक्टरी परीक्षा के लिये जाना है। वह धीरे-धीरे उठा और जमादार के पीछे-पीछे चलने लगा। वह सोच रहा था कि यह बहुत अच्छा हुआ जो मैंने बंसरी पर रेशम और बच्चों का भार डाल उसको जीने के लिये विवश कर दिया। नहीं तो वह मेरा अन्त होने पर कोठी में आग लगा देती और आत्म हत्या कर लेती। मैंने अपना बोझ तो हल्का कर लिया; लेकिन बंसरी न घर की रही न घाट की। उसका अनुराग मुझ पर जादू बनकर बोल रहा है कि संसार को वह अपनी आँखों से देखकर मेरी आँखों से देखती थीं। वह मुझमे खो जाना चाहती थी; लेकिन मैं अभागा ...... ।

जेल की डिसपेंन्सरी निकट आ गई थी और अनन्त की विचार श्रँखला टूट गयी थी। अब वह सामने की ओर देख रहा था।

———

२३

वैसाख बीत रहा था और लू-लपट के झखोरे नित्य की भांति आज भी धरती से आलिंगन कर रहे थे। आँगन का फर्श तवा-सा जल रहा था और चिलचिलाती धूप चांदी का तेजाब बन प्रांगण में ही क्या कमरों के द्वार, वातायन और रोशनदानों से प्रविष्ट हो ऊष्णता फैला रही थी। रेशम राह देख रही थी बंसरी की; क्योंकि अभी युगुल ने भी कौर नहीं तोड़ा था। बंसरी अनन्त से मिलने जेल गयी थी और वहां जाकर उसके साहस के बन्धन ढ़ीले पड़ गये थे। इसीलिये मन बहल जाये और वह थोड़ी देर के लिये अपने दुखद-प्रसंग को ही भूल जाय, वह अपनी सहेली के यहां चली गई थी। रेशम उसकी प्रतिक्षा में रसोई से आंगन में आती और पथ पर दृष्टि दौड़ाकर निराश हो लौट जाती।

"क्या बात है भाभी? बंसरी कहां रह गयी? अब तक तो उसे आ जाना चाहिये था। कमरे में टहलता हुआ युगुल पूछ बैठा।

तभी रेशम हैरानी के स्वर में कहने लगी—"न जाने इतनी देर कहाँ लगा दी? मुझसे तो कुछ कहा भी नहीं बड़ी देर कर दी।"

"किसने देर कर दी रेशम? शायद मेरा जिक्र चल रहा था?" कहती हुइ बंसरी कमरे में आ गई।

रेशम हँस पड़ी और युगुल के होंठों पर भी मुस्कराहट दौड़ गई। बसरी का जो रूप अनन्त के सामने था और जिस परिस्थिति में रास्ते भर वह पलती रही, उस वेदना के घूंट को वह पी गयी थी

ग्रौर ग्रावेश को संतोष में बदल लिया था। वह बन गई थी एक दम सरला ग्रौर मृदुभाषिणी। ग्रनन्त के विषय में उसने किसी से कुछ नहीं कहा। बच्चे बाहर खेल रहे थे। युगुल के सामने जब भोजन की थाली ग्रायी, तो उसने प्यार भरे स्वर में जोर से ग्रावाज लगायी—"ग्ररे कूनी ग्रौर केशव, तुम दोनों कहाँ हो? ग्राग्रो खाना खाग्रो।"

दोनों भाई-बहन ग्रपने चाचा से ग्राकर लिपट गये। यह देख बंसरी ग्रौर रेशम दोनों मुस्करा पड़ीं। फिर एक थाली परोस साथ-ही साथ भोजन करने लगीं।

× × × +

रेशम को ग्रनन्त से बातें करने के लिये एक तो समय नहीं मिला था, दूसरे युगुल ग्रौर बंसरी पास ही थोड़ी दूरी पर खडे थे। ग्रतः वह ग्रपने ग्रन्तर की व्यथा नहीं उगल पायी थी। उस दिन वह देर तक पति से बातें करना चाहती थी; लेकिन उसे यह बोध नहीं था कि मिलन की घड़ियाँ बहुत छोटी होती हैं। ग्राज जब बंसरी उससे मिलकर ग्राई तो वह सोचने लगी कि उनसे (ग्रनन्त से) कल मिलूँगी ग्रौर कहूंगी कि मेरे लिये क्या कहते हो?

ऐसे ही रेशम दोपहर से लेकर रात तक दुनिया भर की बातें सोचती रही कि उनसे यह कहूंगी, वह कहूँगी। लेकिन जब प्रातः वह उसके सामने पहुँची तो रोने लगी ग्रौर उसकी जबान ही न खुली—"न रो रेशम! तकदीर की लकीर मिटाई नहीं जा सकती। मैं जानता था कि तुम ग्रकेले ग्राग्रोगी; क्योंकि तुम्हें ग्राने वाली दुखान्त घडी एक मिनट भी चैन से नहीं बैठने देती है।" ग्रनन्त ने ग्रागे बढ़कर ग्रपनी कमीज से उसके ग्राँसू पोछे। किन्तु रेशम चुप होने की ग्रपेक्षा बाँध तोड़कर रो पड़ी ग्रौर रोते-रोते बोली—मुझे विश्वास

नहीं होता कि भाग्य मेरे अनुकूल रहेगा और तुम छूट जाओगे। मुझे अपनी चिंता बिल्कुल नहीं है। बच्चों के लिये.........।"

"तुम यह सब क्यों सोचती हो रेशम? जान बूझ कर हैरान हो रही हो। तुमको उस दिन समझाया था और आज फिर कह रहा हूं। रोने, दुख करने और झींखने से दुख टल नहीं जाता है। बल्कि उलझन बढ़ जाती है। थोड़ी समाई रखो रेशम।"

इस पर रेशम आँसुओं की धार बहाती हुई बोली—"कहते हो समाई रखो। बहुत दिन तक यह नाटक खेला मैंने' लेकिन अब थक गई हूँ। मुकदमा आज से चलने लगेगा और सेशन के फैसले में एक हफ्ते की देर नहीं लगेगी। मैं जानती हूँ कि युगुल और बंसरी हमारे शुभ चिंतक हैं, पर वे मेरे दुख के भागीदार तो नहीं बन सकते।"

अनन्त प्रसंग बदलकर बोला—"तुम आज अकेली ही चली आयीं? युगुल पहुंचाने आया होगा।"

"नहीं, मैं अकेली ही आयी थी।" रेशम आँसू पोंछती हुई बोली।

और अनन्त उसके आगे दुख भरा पचड़ा छेड़ने का अवसर न देकर तत्क्षण ही मुकदमें की पैरवी के विषय में बात करने लगा। धीरे-धीरे रेशम उसी वार्तालाप के प्रवाह में वह गयी और दोनो बिछुड़ते-बिछड़ते अपनी-अपनी बात कहते रहे।

× × × ×

अनन्त को इस दुख के समय भी हँसी आ रही थी कि रेशम एक दम पान-फूल जैसी है। उसका कड़ी धूप में तो यह हाल है कि

वह मुरझा कर मृत प्रायः हो गयी है और अब जब कि उसकी सूखी जड़ों में पानी सींचने वाले दो-दो सहारे सम्मुख हैं, तब वह जिन्दगी का उपहास करती है। वह मुझ से पहले मरना चाहती है, पगली कहीं की।

और रेशम मन-ही-मन अपने प्रति खीज रही थी कि मैं आज बातों में बहकी रहीं। उनसे यह पूछ ही नहीं पाई कि मेरे लिये क्या कहते हो? यह तो वहीं मिसाल हुई कि आई थीं हरि भजन को और ओटन लगी कपास।

मैं कितनीं भोली हूँ कि मुझे ठगने में किसी को देर नहीं लगती। जब भाग्य ही ने मुझे गुड़ दिखाकर ईंट मार दी, तो फिर वे तो मेरे पति हैं और मेरे दुख को भुलाने के लिये ही ऐसा किया होगा उन्होंने। कितना ध्यान रखते हैं वे मेरा। काश! वे छूट जाते और मैं जिंदगी भर उनके पद पखारती रहती। वे मेरे देवता हैं और मैं उनकी चरणदासी।

घर समीप आ गया था। और रेशम की खीज गर्व पूर्ण प्रसन्नता में बदल गई थी।

———

२४

मुकदमा तो अनन्त पर पहले ही बन चुका था, जिसमें वह फाँसीं का अधिकारी सिद्ध कर दिया गया था। अब जुर्म था उस पर फरार होने का; उसका मुकदमा आज तीन दिन से चल रहा था। युगुल घर में छत पर टहलता हुआ सोच रहा था कि अगर कहीं ऐसा हुआ कि अनन्त भय्या को पहले जेल से भागने की सजा में दो-तीन साल का कठोर कारावास मिले फिर फाँसी पर लटकना पड़े। भविष्य कैसा विचित्र है कि उसकी परिभाषा आज तक किसी ने नहीं पढ़ पायी। कल क्या होगा यह कोई नहीं जानता है। यथाति का किला पल मात्र में ही जमीन में धँस गया और खम्भा फाड़कर तत्काल ही प्रहलाद को बचाने के लिये नृसिहावतार हो गया। कभी तो ऐसा लगने लगता है कि भय्या बेगुनाह है। अपील में वे साफ छूट जायेंगे पहले तो अपील करने का मौका ही नहीं मिला था; क्योंकि फाँसी की सजा होने के दूसरे दिन ही वे जेल से भाग गये थे। उन्होंने कल चलते-चलते मुझसे कहा था कि अब कब आओगे। तो मैंने सहज ही कह दिया था "कल आऊँगा।" मुझे बहुत दुःख होता है उनको देखकर। जी चाहने लगता है कि उनके पैर की बेड़ियाँ निकाल कर स्वयं पहन लूँ। लेकिन कानून भला इसकी इजाजत क्यों देगा।

ऐसा ही सोचता-विचारता युगुल नीचे उतर आया। वह बाहर जाकर भी अपने मन को नहीं बदल पाया। और बदल भी कैसे सकता था? खून जोश मार रहा था। उसका खूनी रिश्ता था अनन्त से।

इसलिये तो जब वह जेल पहुँचा तो उसके सामने, सीना फुलाकर गर्व पूर्वक कहने लगा—"तुम बेफिक्र रहो भय्या! जहां तुम्हारा

पसीना गिरे वहां यदि मैं अपना खून गिरा सकूँ तो यह मेरा सौभाग्य होगा। अब तक तो मैं तुमको शिष्टाचार और दुनियादारी के आश्वासन और प्रलोभन देता रहा। वह केवल मोहवश; लेकिन आज यह वचन देता हूं कि अगर तुम्हारा साथ दैव ने न दिया तो मैं आजीवन ब्याह नहीं करूँगा। भाभी और बच्चों का भार मुझ पर रहेगा।"

अनन्त की आखों में प्रसन्नता के आँसू भर आयें। वह स्नेह भरी दृष्टि से युगुल की ओर देखने लगा और युगुल एक दम कुछ सिटपिटा-सा गया और फिर सहमी हुई वाणी में धीरे-धीरे कहने लगा —"अब मेरा मन इतना कच्चा हो गया है भय्या कि मुझे भविष्य पर तनिक भी विश्वास नहीं होता। यों तो आशा पर दुनिया स्थिर है; लेकिन मैं सबसे पहले चादर के काले छोर को देखता हूँ।"

अनन्त को युगुल की कुशाग्र बुद्धि पर अत्यधिक प्रसन्नता हो आयी। वह आह्लाद से भर उठा और दोनों हाथ फैलाकर उसको गले से लगा, बच्चों की भांति फूट-फूट कर रोने लगा। युगुल भी रुदन के वेग में भाई के साथ ही कहने लगा और दोनों देर तक उसी व्यथा में रत रहे। और जब उनके सिर उठे तब तक मिलाई का समय समाप्त हो चुका था।

× × × ×

अनन्त जब कैदियों की लारी में बन्दूक धारी सिपाहियों के निरीक्षण में चढ़ाया जा रहा था तो उसने देखा युगुल अब भी जेल के फाटक के सामने नीम के नीचे खड़ा है।

लारी चल पड़ी और अनन्त के मन ने कहा कि कैसा विचित्र व्यापार है संसार का जहां हड्डी में से मांस छुड़ा लिया जाता है और

'उफ' तक करने की इजाजत नहीं मिलती। सृष्टि ने तो मनुष्य को स्वतन्त्र रक्खा है, फिर उस पर शासन क्यों होता है ? जिसे उथली समझ वाले अराजकता समझते हैं। यदि उसी अराजकता को निःस्वार्थ होकर देखा जाय तो उसमें हीं स्थायी विश्व-शांति छिपी मिलेगी। मैं कानून का बन्दी हूं। अपने भाई से जाकर कैसे मिल सकता हूँ। वाह रे संसार! तू भला परम्परा क्योंकि तेरे समक्ष तो मनुष्य मिट्टी का एक पुतला है।

लारी चली जा रही थी और अनन्त मन-ही-मन बुद-बुदा कर दोहरा रहा था—"मनुष्य तो केवल मिट्टी का पुतला है।"

———

२५

जेल से वापस आकर युगुल सीधा कचहरी गया। रेशम और बंसरी पहले ही पहूँच चुकी थीं। इजलास लग रहा था। बहस चल रही थी। इतने में एक गौरय्या आयी और उड़ते-उड़ते अचानक पूरी रफ्तार में चल रहे सीलिंग फैन से टकरा गई। उसके पर टूट गये और वह नीचे गिर कर तनिक फड़फड़ाई और सदा के लिये सो गयी। युगुल ने फर्श पर उसके पड़े हुए कई क़तरे खून की ओर देखा। वह सहम गया। उसके अन्तः करण में प्रश्न उठा—"मनुष्य का भी खून ऐसा ही होती है। फिर वह सोचने लगा चिड़िया का मरना मुझे कुछ ऐसा लग रहा है कि मुकदमे का अन्त अच्छा नहीं है। चारों तरफ हाहाकार मच जायेगा। सब तितिर-बितिर हो जायेंगे। उस समय क्या स्थिति होगी ?"

युगुल का सिर घूमने लगा। और मुँह में कुछ मिचलाहट-सी मालूम हुई। उसे लगा उल्टी हो जायेगा, इसलिये जल्दी से बाहर जाने लगा; लेकिन बीच में ही पैर लड़खाये और वह फटे दूध की भाँति कै (उल्टी) पदार्थ उगलने लगा। रेशम और बंसरी उसके पास आ गईं। रेशम पीठ सहलाने लगी और बंसरी दौड़कर पानी ले आई। इतने में युगुल को एक श्वेत-सा दस्त हुआ और बदन जूने की भाँति ऐंठने लगा। उसका मुँह सूख रहा था। सूखी आवाज से उसने कहा—"पानी"।

उसके हाथ काँप रहे थे। अत बंसरी गिलास उसके मुँह से लगाती हुई बोलीं—"पीना नहीं, कुल्ला कर लो।"

किन्तु युगुल घट्ट-घट्ट करके पूरा गिलास खाली कर गया और

मुर्दा-सा वहीं पड़ रहा। उसके सब कपड़े लथपथ थे। बंसरी और रेशम ने किसी प्रकार उसको लाकर कार में डाला और फिर आँधी के समान कार आई० डी० एच० की ओर भागने लगी।

अनन्त युगुल को इस अचानक आ गई विपत्ति में देखकर घबड़ा उठा। उसके मुँह से एक हल्की-सी चीख़ निकल गई और आँखों में आँसू भर आये।

× × × ×

प्रातः युगुल ने दूध की वर्फ पड़ी हुई लस्सी पी थी और फिर उसके थोड़ी देर बाद बंसरी और रेशम के आग्रह से तरबूज खा लिया था। इसके पहले रात से ही उसे खट्टी डकारें आ रही थीं जो अपच की स्पष्ट प्रतीक थी। तरबूज खाने के बाद से ही उसे कुछ ऐंठन मालूम होने लगी जिसे वह बहुत देर तक दावे रहा; लेकिन जब पीड़ा अपनी चरम सीमा पर पहुंच गई तो उसे कै और दस्त आने लगे।

बंसरी ने युगुल को अस्पताल में भरती करवा दिया था और खिन्न मन लुटी-सी रेशम के पास बैठी उसे सान्त्वना दे रही थी कि तुम कहती हो कि युगुल को हैजा हो गया है। कचहरी में मैं बहुत घबड़ा गई थी, इस लिये अस्पताल ले आई। अभी ठीक हो जायेगा वह।

और दूध की जली मट्ठा फूँक-फूँक कर पीने वाली रेशम ने जब वार्ड के बाहर आने वाली नर्स से पूछा कि उसके मरीज का क्या हाल है तो नर्स कहने लगी—"उल्टियों पर उल्टियाँ और दस्त

पर दस्त आ रहे हैं। तुम्हारा मरीज बहुत कमजोर हो गया है। कोशिश की जा रही है।"

"ऐं।" चौंक कर रेशम फटी आँखों से बंसरी की ओर देखने लगी। बंसरी उठकर खड़ी हो गई और नर्सों के लाख मना करने पर भी वह वार्ड में घुस गई। उसके पीछे पगली रेशम भी थी। वे दोनों जाकर युगुल के पलँग के पास रुकीं। वहाँ की स्थिति देख दोनों स्तब्ध रह गईं। युगुल आँखें बन्द किये लेटा हाथ-पैर फड़-फड़ा रहा था। दो कम्पाउन्डर उसको पकड़े थे और डाक्टर इन्जेक्शन लगा रहा था। उसका चेहरा बिल्कुल सफेद हो गया था और बदन इस प्रकार लगता था मानों किसी ने कपड़े की तरह उसे निचोड़ दिया हो। सब खून पानी बन गया था। हाथों और पैरों के नाखून सफेद हो गये थे।

यह देख रेशम रोने लगी और बंसरी रामेश्वर को टेलीफोन करने दौड़ी। तब तक युगुल को क्षण-क्षण पर पाँच-छै उल्टियाँ और दस्त हुये। वह अत्यन्त शिथिल पड़ गया। उसने आँखें खोलीं और रेशम की ओर देखकर क्षीण स्वर में बोला—"मैं जा रहा हूँ भाभी। बंसरी मेरी धर्म बहन है तुमको और बच्चों को मैं उसी के हाथों सौंप रहा हूँ। और भय्य ... ।"

रेशम अब बिलख-बिलख कर रोने लगी थी और बंसरी टेली-फोन करके वापस लौट आई थी।

युगुल ने अपनी मुँदी हुई पलकें पुनः खोलीं और कुछ कहने

के लिए होंठ हिलाये ही थे कि डाक्टर ने उसे बोलने से मना कर दिया। इस पर उसकी आँखों से आंसू झरने लगे। बंसरी आगे बढ़ उससे सान्त्वना भरे स्वर में पूछने लगी—"क्या बात है युगुल ! घबड़ाते क्यों हो ? अभी अच्छे हो जाओगे।"

अब डाक्टर की उपेक्षा कर आत्म संयम खोकर विह्वल युगुल बोल पड़ा—"हां अच्छा हो जाऊँगा। अभी बहुत जल्दी। बंसरी रेशम-भाभी को मत भूलना। मरने वाले की यही विनती है तुमसे। मैं··· —— ।"

एक हल्की-सी बेहोशी आई। फिर इंजेक्शन लगा और उल्टी हुइ साथ ही उसका मल खस गया। पलमात्र में ही एक हिचकी आने के साथ उसकी गर्दन तकिये से नीचे लटक गई।

रेशम और बंसरी छाती पीटने लगीं। उनके करुण क्रन्दन से सारा वार्ड गुंज उठा। मौत ने सब पर मुर्दनी डाल दी थी। सभी अवाक् के मुँह बाए हक्का-बक्का।

चारपाई से उतार कर जब युगुल का शव स्ट्रेचर पर रक्खा जा रहा था तभी रामेश्वर ने वार्ड में प्रवेश किया। स्ट्रेचर के पीछे-पीछे जब रोती हुई आ रही बंसरी और रेशम को उन्होंने देखा तो वे सब कुछ समझ गये और पुत्र के शव पर पछाड़ खाकर गिरते हुए

रोकर बोले—"तूने मुझे धोखा दिया युगुल ! हाय ! मैं लुट गया ! मेरा लाल !"

चपरासियों ने स्ट्रेचर वहीं रख दिया और रामेश्वर युगुल की मृत देह से लिपट बिलख-बिलख कर रोने लगे।

————

२६

जिस दिन युगुल की मृत्यु हुई उसके दूसरे ही दिन अनन्त को ढ़ाई वर्ष का कठोर कारावास और फाँसी की सजा मिली। वह जब जेल की अँधेरी कोठरी में जा कर बैठा तो उस समय वह अपने आपे में नहीं था। उसकी आँखों से खून बरस रहा था। और देह से चिनगारियाँ निकल रही थीं। ऐसा लगता था कि वह पागल हो गया है। वह कभी अपने बाल नोंचकर और कभी दाँत किट-किटाकर कहने लगता—"मेरे साथ बेइन्साफी हुई है और जब अब मुझे फाँसी होने जा रही है तो युगुल भी इस दुनियां से उठ गया। इन सारे झगड़ों की जड़ बूढ़े-बकरे चाचा रामेश्वर को फिर जिन्दा क्यों छोड़ूँ। मैं टेटुआ दबाकर उनका खून पी लूँगा। नाखूनों से उनका पेट फाड़ डालूँगा। नहीं तो वे बेचारी रेशम और बच्चों को खा जायेंगे। वे राक्षस हैं भूख लगने पर वे अपना मांस भी खा सकते हैं।"

इसके बाद अनन्त के हाथ कांपने लगे और पंजे आगे उठ आये वह आवेश में आगे बड़ा और दीवाल से टकराया। सिर फूट गया। उसने दोनों हाथ सिर पर रख लिए और धम्म से बैठ गया। जब पीड़ा कुछ कम हुई, तो उसका हाथ मत्थे पर गया। खून में अब भी गर्मी थी। वह लेई-सा उँगलियों में सन गया था। उसने उसी रक्त का माथे पर तिलक लगाया और मन-ही-मन यह संकल्प कर लिया कि मैं यह प्रयत्न करूँगा कि जेल से एक बार फिर भाग निकलूँ। तब रेशम और बच्चों के लिये भागा था; लेकिन अब भागूँगा रामेश्वर का ख़ून करने के लिए। जब झूटे अभियोग पर

फांसी हो रही है तो उनकी जान लेकर ही मरूँ। मैं खूनी हूँ। यदि दुनिया में सच्चाई कोई वस्तु है, तो मेरा जीत तो तब होगी। जब रामेश्वर मेरे मरने से पहले ही मर जायेगा। यदि ऐसा न हुआ तो मैं अपना दुर्भाग्य समझूँगा और मेरा संकल्प है कि मैं उसको मारकर ही मरूँगा। यही मेरा प्रण है। बस ! तभी तो मैं शान्ति से मर सकूँगा। नहीं तो मरने के पहले पागल जरूर हो जाऊँगा। जब आदमी गम खाता है तो उसी के मौन गीत गाता-गाता विदेह हो जाता है। तभी लोग उसे पागल कहने लगते हैं। मैं भी उन्हीं पागलों में से एक हूं।

अनन्त की विशिप्तावस्था अब धीरे-धीरे शांत होने लगी थी। वह युगुल के प्रति अतीव शोक से भर आया था। उसके सामने युगुल सजीव आकर खड़ा हो गया और कहने लगा—"भय्या मैं भाभी रेशम और बच्चों के लिये आजीवन ब्याह नहीं करूँगा।"

अनन्त रोने लगा और रोते-रोते अस्फुट स्वर में बड़बड़ाने लगा—"युगुल भय्या। मैं भी मौत के दरबाजे पर खड़ा हूँ। तुम्हारे पीछे आ रहा हूँ। घबड़ाना मत भय्या। मैं तुम्हारा साथ नहीं छोड़ूँगा।"

इसके बाद वह फर्श पर लुढ़क गया। और उसी अवस्था में सो गया। स्वप्न में उसने अपने पूरे परिवार को देखा। जिसमें सबके अनेक रूप थे। हँसने-रोने का संगम था और थे मिलन-जुदाई के दृश्य। सहसा वीभत्स घटनायें उसे चौंका देती और वह चौंक

कर जाग पड़ता। फिर तत्क्षण ही पलकें मूँद स्वप्न की दुनियाँ में पहुँच जाता।

रात बीत रहीं थी और अनन्त का नींद के बाजार में स्वप्न रूपी व्यापार चल रहा था।

———

२७

वैभव का दिया बुझ गया था; लेकिन उसकी बाती से धुआं अब भी उठ रहा था। रामेश्वर अपनी ही लगाई हुई आग में झुलस-झुलस कर जल रहे थे। उस समय उन्हें अपना कोई नहीं देख पड़ रहा था जो उन्हें उस आग से बाहर निकाल लेता। भलाई के हाथों को काट अब वे बुराई का मुँह तक रहे थे। दुनिया उनका उपहास कर रही थी।

रेशम आजकल सबकी चर्चा का विषय बन रही थी कि उसके साथ सरासर अन्याय हुआ। एक प्राणी के पीछे तीन जाने भटकतीं और ठोकरें खाती फिरेंगी। पाप की जीत होती है यह कलियुग की पहचान हैं। आजकल जो न हो जाय, सो थोड़ा है।

और रेशम उस दिन से ही गूँगी-बहरी बन गई थी जब वह अदालत में पति का फैसला सुनने गई थी। बंसरी ने उसका साथ नही छोडा। वह अब भी उसके साथ ही रहती थी। उसने हाईकोर्ट में अपील की; लेकिन नतीजा कुछ नहीं निकला। अनन्त की दोनों सजाये बहाल रहीं।

जेठ की उजियारे पक्ष की तीज का हँसिया-सा चाँद नीले अम्बर में तैर रहा था। तारों की टोलियाँ एकत्रित हो सारे नभ पर चांदी की फुल-झडियां-सी लग रही थीं। वायु में नमीं थी। क्योंकि मानसून की ऋतु आ गई थी। आधे आंगन में दूधिया चांदनी फैल रही थी। फर्श पर एक शीतल-पाटी बिछी थी। इस पर लेटी रेशम, उदास मुद्रा लिए नीले गगन को देख रही थी। बच्चों को छत पर सुलाकर बंसरी नीचे आयी तो रेशम को उस स्थिति में देख वह निकट आ विस्मित स्वर में

कहने लगी—"अरे! तुम तो नीचे ही लेट गईं और मैं जड़ बनी तुम्हारी राह देख रही थी। आओ ऊपर चलें।"

रेशम मुँह से कुछ नहीं बोली। हिली-डुली और फिर उठकर बैठ गई।

ऊपर आ रेशम चारपाई पर अभी लेटी ही थी कि बंसरी ने ही धीरे से अपनत्वभरी वाणी में कहना आरम्भ किया—"मेरी बात मानो रेशम! इस घर का मोह छोड़ो और मेरे साथ बच्चों को लेकर लखनऊ चलो। तब मैं सब ओर से निश्चिन्त रह सकूँगी। पता नहीं क्यों मुझे तुमको अकेले छोड़ना भय से खाली नहीं लगता है। तुम ··· ।"

रेशम लेटे ही लेटे उसकी बात में बाधा देकर बोली—"पता नहीं कितना नुकसान हो रहा होगा प्रेस और दुकान में; लेकिन मुश्किल तो यह है कि मैं तुमसे जब भी लखनऊ जाने को कहती हूँ तो तुम जवाब ही नहीं देती हो। मैं लखनऊ चलकर क्या करूंगी। मुझे यहीं रहने दो। केवल हृदय में जगह बनाये रखना। दुनियां में इन्सान भलाई करने के लिये अपना सिर भी कटा लेता है; लेकिन दुख तो एक ऐसी चीज़ है जिसे कोई भी नहीं बटां सकता।"

बंसरी को कुछ हल्की सी वेदना पहुंची; क्योंकि रेशम ने उसका अनुग्रह स्वीकार नहीं किया। वह द्रवित स्वर में बोली—"मुझे किसी भी वस्तु से लगाव नहीं रह गया है रेशम। मोह का सुख कभी स्थायी नहीं रहता। जी चाहता है कि संसार से विरक्त हो जाऊं। क्या करना है धन-वैभव का, जिसके लिये मनुष्य को विलास का कीड़ा बनना पड़ता है। मैं वह कीड़ा नहीं बनना चाहती हूँ अच्छा, मैं लख़नऊ न जाकर अब यहीं रहूँगी। मैं तुम पर जोर नहीं डालती और न तुम्हारे दुखे हुये हृदय को और दुखाना ही चाहती हूँ।"

अब रेशम समझ गई कि बंसरी स्वयं दुख से भर आयी है, अतः उससे दुख पूर्ण वार्ता करना उचित न होगा। वह धीरे-धीरे सहज-स्वर में कहने लगी—"अभी तुम भी अस्थिर हो और मैं भी कटी पतंग की भाँति इधर–उधर डोल रही हूं। तनिक शांत होने पर हम दोनों ब्रहने जैसा उचित होगा करेंगी। तब न तुम्हें कोई शिकायत होगी और न मुझे।" ऐसा कहते-कहते रेशम वहाँ से उठी और बंसरी की चारपाई पर बैठ गई।

बंसरी उठते ही उसके गले से लिपट गई और दोनों दुखियारिनें सिसक-सिसक कर रोने लगीं। वे सिसक रही थीं और शनैः-शनैः डोलता हुआ पवन अपने तारों पर उनकी सिसकियों को बैठा जेल की चहार-दीवारी पर पहुंच रहा था; लेकिन अनन्त तो तह खाने में था। उसके कानों तक वे सिसकियाँ कैसे पहुँच सकती थीं। यह विश्व का वैचित्र्य था और था भाग्य का खेल।

———

२८

झूठी विजय प्राप्त कर लेने वाला व्यक्ति कभी पथ पर दृष्टि उठा-कर नहीं चल पाता ; ठीक ऐसे हीं पापीं मनुष्य के हृदय में यह चोर हमेशा घुसा ही रहता है कि कहीं कोई मेरा भेद जान तो नहीं पाया। ऐसे दुर्बल-हृदय आदमियों के चित्त कभी स्थिर नहीं रहते; क्योंकि उनमें साहस का सर्वथा अभाव होता है। रामेश्वर के मुख पर हत्या जैसी लग गई थी। वे साक्षात हत्यारों जैसी आकृति वाले प्रतात हो रहे थे। घर में केवल एक नौकर था जिसको उन्होंने ज़वाब दे दिया था। और खाना बनाने के लिये आने वालीं महराजिन एक मास का वेतन पुरुस्कार-स्वरूप प्राप्त कर घर में बैठ रही थी। इसी तरह महरी को घर में आने की मनाही हो गयी थी अब घर के किवाड़ दिन-रात बन्द ही रहते थे।

दिन की वेला में जब कि दोपहर खूब तप रही थी। रामेश्वर के कमरे का पँखा बन्द था। उनके ललाट पर पसीने की बूँदे मोती-सी झलक रही थीं और सारा शरीर स्वेद–सिक्त हो गया था। तहमद की तरह धोती बाँधे और सैंडो बनियाइन धारण किये वे परेशान से कमरे में टहल रहे थे। उन्हें लग रहा था कि उनके सिर पर हथौड़े की चोटें पड़ रही हैं और पाप ललकार–ललकार कर कह रहा है—"तू हत्यारा है, अपने वंश का स्वयं अपना। मौत भी तुझसे घृणा करती है। तेरी दुर्गति तो ऐसी होगी कि तू एक बूँद पानी को तरसेगा और कोई तेरी तरफ आँख उठाकर भी नहीं देखेगा। अब तू ऊब गया है जिन्दगी से, क्यों अब विलास अच्छा नहीं लगता? तुझे विलास जिन्दा ही मार डालेगा। तू मनुष्य नही, पशु है और वह भी क्रूर, जंगली तथा खूँख्वार।"

रामेश्वर ने दोनों कानों पर तेजी से हाथ रख लिये और भर–

भराकर एक ग्राराम कुर्सी पर ग्रा गिरे। तब उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा कि कोई उनको कुर्सी से उठाकर फेंके दे रहा है। उनकी ग्राँखे मिच गई ग्रौर वे भय से थर-थर काँपने लगे। ग्रब वे बन्द ग्राँखों से ग्रंधकार में यह देख रहे थे कि रामेश्वर रक्तपूर्ण नेत्रों से उनकी ग्रोर देख रहे हैं। वे क्रोध से दांत पीसते हुये ग्रागे बढ़ ग्राये ग्रौर दोनों हाथों से उनका गला दावने लगे।

"देख! तू कैसे तड़प-तड़प कर मरता है। ले!" रामेश्वर ने यह सूना ग्रौर उठकर भागने लगे। पैर थरथराये ग्रौर वे धम्म से फर्श पर गिर पड़े। ग्रब वह प्रेत छाया उनकी छाती पर सवार थी ग्रौर दोनों हाथों से उनका पेर फाडने को उद्यत हो ग्रपने नाखूनों से खाल को नोंचने लगी।

रामेश्वर के मुँह से एक जोर की चीख निकल पड़ी ग्रौर वे ग्रचेनावस्था को प्राप्त हो वहीं फर्श पर लुढ़क पड़े।

× × × ×

पाप करने के पहले यदि मनुष्य उसके परिणाम को सोचते तो फिर उसे प्रायश्चित के लिये न भटकना पड़े; लेकिन लालच भूखा होता है ग्रौर कुचक्र इस कलियुग में ग्रपनी परिधि में न घूमकर इधर-उधर मन माना नाच नाच रहा है। ग्रौर फिर ग्रावेश तो ग्रन्धा होता ही है। यदि रामेश्वर ने ग्रपने जीवन में ग्रपने वंश की हत्या का पाप न कमाया होता तो उन्हें हैरान होने की नौबत न ग्राती; किन्तु वे मदान्ध थे। स्वार्थ शनिश्चर का ग्रह बनकर उनके सिर पर सवार हो गया था, जिससे वे कानून की नजरों से तो बच गये; मगर ग्रब दुनिया वालों के मुँह खुले होने के साथ-साथ वे स्वयं ग्रपने किये पर पछता रहे थे, खीझ रहे थे ग्रौर मुँह लुकाए घर में बैठे थे।

दोपहर से लेकर शाम तक वे कमरे में उसी अवस्था में पड़े रहे, जो चीखने के बाद हो गई थी। रात को पहला पहर बीतते-बीतते वे उठे। जमुहाते हुये एक अंगडाई ली और उठकर बैठ गये। कमरे में घुप्प अंधेरा था। उन्होंने बिजली का स्विच दबाया! सारा कमरा विद्युत प्रकाश से जगमगा उठा। अब भी वे पसीने से नहा रहे थे। उनकी उंगलियाँ पंखे के रेगुलेटर पर पहुँची और हवा में पसीना सूखने लगा। अब वे किवाड़े खोलकर कमरे के बाहर आये। फिर झज्जर से एक गिलास ठँडे पानी का भरा। वे उसको एक साँस ही में पी गये। कल दोपहर से उन्होंने कुछ नहीं खाया था। खाली पेट में पानी तीर-सा जाकर लगा। वे गिलास रख और दोनों हाथों से पेट पकड़ वहीं आँगन में बैठ गये।

इस समय हवा बिल्कुल बन्द थी और आँगन के फर्श से गर्म साँस निकल रही थी। जिससे रामेश्वर के तलुवे गर्म होकर पसीज उठे। आकाश में हंसता हुआ चांद उनकी खिल्ली उड़ा रहा था और उसकी चांदनी उनके कलुष को धो रही थी। घर में मौत जैसा सन्नाटा व्याप्त हो रहा था और मूक दीवालें वाचाल बन उनको धिक्कार रहीं थीं कि रामेश्वर तुम क्या खाकर प्रायश्चित करोगे? तुम्हारा पाप तो ऐसा है कि उसका प्रायश्चित ही नहीं। तुम केवल पाप के भागी हो। तुम मनुष्य नहीं हो, अतः मनुष्यगत् संस्कारों से वंचित ही रहोगे। रह गयी मृत्यु, उसके भी तुम अधिकारी नहीं हो। तुम मोरी के कीडे हो। इसी तरह बिलबिलाते रहोगे। कोई तुम्हारा साथ नही देगा। तुम दुनिया के कोढ़ हो। अब समय आ गया है कि टप्-टप् तुम्हारी देह से कोढ़ चुएगा और तुम्हारी तरफ देख-कर लोग थूकने लग जायेंगे।

रामेश्वर अब वहां बैठे न रह सके। वे छत पर जा पहुंचे और

एक मुँडेर पर बैठ आकाश की ओर एक टक निहारने लगे। वे सोच रहे थे कि कोई नहीं जानता कि किस समय उसे होनहार के पहाड़ के नीचे दबना पड़ेगा। अर्थ-लिप्सा ने मुझे पागल बना दिया था, वरना मैं अपने भाई का खून करता। मेरा नसीब फूट गया था, बुद्धि पर पत्थर पड़ गये थे। इसलिये ऐसा हुआ। अब क्यां करूँ ? कुछ भी समझ में नही आता है। युगुल की असमय मौत का कारण मैं ही हूं। यदि मैंने गुनाह न किया होता, तो मेरा बेटा कभी नहीं मरता। मेरी जिन्दगी का क्या भरोसा ? और अकेले जीकर करूंगा भी क्या? यदि रेशम और उसके बच्चों को लेकर जीना चाहूं तो यह असम्भव है; क्योंकि बसरी के समक्ष मेरी क्या हस्ती। वह सोने का पहाड़ है और मैं छोटा सा टीला मिट्टी का। रेशम मुझ पर कभी विश्वास नही करेगी। मैंने उसके साथ अन्याय पर अन्याय किये हैं और उसने कभी उफ़ तक नहीं किया। फिर यह धन–सम्पत्ति का भोग कौन भोगेगा ? अनन्त को फाँसी होगी यह निश्चित है। क्या मैं अपने वंश के दिये को बुझा दूं ? यह नहीं हो सकता। अब मुझे युगुल के अभाव की पूर्ति अनन्त से करनी होगी। तभी मैं सुख से मर सकूंगा मनुष्य के जीवन का सबसे बड़ा पुण्य वही होता है जब दुनिया के सब झंझटों से छूट वह निश्चिन्तता की नींद सो जाता है। पहले मैं मौत से डरता था; लेकिन अब जितनी जल्दी दुनिया से उठ जाऊं उतना अच्छा है। मैं अपने भाई सोमेश्वर का हत्यारा हूँ और मैंने ही अपना दोष अनन्त के सिर पर मढा है। इस बात को मैं स्वयं सेशन जज के सामने जाकर कहूँगा। अदालत जिस तरह मानेगी उसको मनवाकर रहूंगा कि कातिल मैं हूं। अनन्त सर्वथा निर्दोष है। इस भांति मुझे मौत के लिये भटकना नहीं पड़ेगा और अनन्त छूट जायेगा। मुझे अनन्त को बचाना होगा अगर ऐसा नहीं होता है, तो वंश का नाश हो जायेगा, दिया बुझ जायेगा और क़िला ढ़ह जायेगा। मैं कल ही इस काम को कर डालूंगा। देर करना ठीक नहीं; क्योंकि सोचे

हुए काम को समय पर न करने से वह कभी पूरा नहीं होता है।

अब रामेश्वर को थोड़ा-सा सन्तोष मिल गया था, क्योंकि वे एक निष्कर्ष पर पहुंच गये थे। वे उस तथ्य को निश्चित में बदलने के लिये व्यग्र हो उठे।

इस प्रकार छत पर ही बैठे-बैठे रामेश्वर ऊंघने लगे और रात बींतती गई।

— — — —

२६

अब जड़ चेतन बन गया था। रामेश्वर ने सत्य को उगल दिया। उन पर मुकदमा चलने लगा और अनन्त को पुनः अदालत में हाजिर किया गया। यह स्थिति हो गई थी कि रामेश्वर चिल्ला-चिल्ला कर कहते थे—"मैं खूनी हूं। अपने भाई का खून मैंने किया है। अनन्त बेगुनाह है। पहले मैंने यह सोचा था कि भाई को मार कर और अनन्त को फाँसी पर चढ़वाकर चैन की बंसरी बजाऊँगा। मैं और पुत्र मालिक बनकर सारी धन–सम्पदा का भोग करूँगा। लेकिन अब युगुल दुनिया से उठ गया है तभी तो मेरी आँखें खुली हैं।

किन्तु अनन्त एक दम मौन था। न तो वह किसीं वकील को कुछ जवाब देता था और न जज के पूछने पर हीं बोलता था। और रामेश्वर कीं बातों को तो जैसे वह सुनता ही नहीं था। अदालत को विश्वास दिलाने के लिये रामेश्वर को विवश होकर एक नया रास्ता अपनाना पड़ा। वे इजलास में कूनी और केशव को ले जाकर खड़े हुये।

बंसरी और रेशम दोनों आश्चर्य पूर्वक एक दूसरे कीं ओर देख रहीं थीं। उनके मत में कौतूहल नाच रहा था। और अनन्त नीची दृष्टि किए दाहिने पैंर के अँगूठे से फर्श कुरेद रहा था।

रामेश्वर ने दोनों बच्चों को अनन्त के आगे बढ़ाते हुए कहा—"लो अनन्त पकड़ों उन दोनों की बाँह और कहो खून तुमने किया था या मैंने ? मैं पाप के भार से दबा जा रहा हूँ

अनन्त। मुझे उबार लो बेटा। मैं अपने गुनाहों की सजा भुगतने को तैयार हूँ। उसमें बाधा न डालो। बोलो अनन्त ! तुमको बच्चों की शपथ है ?"

अनन्त भी इजलास में बच्चों की भाँति फूट कर रो पड़ा और रोते-रोते—"बोला चाचा जी क्या हो गया है आपको, मुझे सत्य कहने के लिये इतना विवश क्यों कर रहे हैं। मैं— ।"

"इसलिये बेटा कि मेरा गुनाह अब मेरे सिर पर चढ़कर बोलने लगा है। ऐसा लगता है कि मैं पागल हो जाऊँगा। तुम्हारे बाप की आत्मा मुझे एक मिनट भी शांति से नहीं बैठने देती। ऐसी स्थिति में अपना दोष न्याय के सामने रखकर मैं उसका दण्ड भुगतना चाहता हूँ। इसके बिना मेरी गति नहीं है। पहले जब मौत मुझे प्यार करती थी तो में डरता था; लेकिन अब जब वह दुतकारती है तो मैं उसकी शरण चाहता हूँ। कह दो अनन्त कि खून तुमने नहीं मैंने किया है।"

रामेश्वर इतना सब कह गये और फिर बड़ी उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा करने लगे कि अनन्त को मैंने बच्चों की क़सम खिलाई है। अब वह झूठ कभी नहीं बोलेगा। उसे सच-सच कहना ही होगा।

जज और सरकारी वकील ने अधिक जोर दिया। तब अनन्त ने बच्चों की बांह पकड़कर साक्षी दी और सत्य-सत्य सब कुछ कह दिया।

मुकदमे की पूरी सुनवाई हो चुकी थीं। सबूत, जिरह, सफाई और बहस होने के बाद आज फैसले का दिन था।

अनन्त छूट गया और रामेश्वर को मृत्यु दण्ड सुना दिया गया। अनन्त रोने लगा और रामेश्वर के मुख पर प्रसन्नता खेलने लगी। उन्होंने आगे बढ़कर अनन्त का मुख चूम लिया और आनन्दाश्रु बटाते हुए दो सिपाहियों के साथ कैदियों की गाड़ी की ओर चल दिये।

बंसरी और रेशम के भी आंसू आ गये। उन दोनों को इस समय रामेश्वर पर तरस आ रहा था।

पुलिस की लारीं हवालात में आ अन्य बंदियों को ले जेल की ओर जा रही थी और अनन्त अपने परिवार के साथ घर की ओर आ रहा था। उसके आंसू रुकने का नाम न लेते थे। वह दुखी था तो केवल इस लिए कि उसके सिर पर की छाया हट रही है। अब वह अनाथ हो जायेगा। कार तारकोल की सड़क पर रपट रहीं थीं। उसमें बैठे सभी प्राणी मौन–पाश में बद्ध थे।

———

३०

निर्णय के बाद ठीक बाइसवे दिन रामेश्वर को फाँसी दे दी गयीं। अनन्त उसके शव को घर में लाया। इसके पहले उसने इस घर का ताला भी न खोला था।

विधिवत मृतक का दाह-संस्कार और अन्त्येष्ठि-क्रिया समाप्त हुई। अब बंसरी ने अनन्त के सामने अपने लखनऊ जाने का प्रस्ताव रक्खा। अनन्त कह ही क्या सकता था। वह उसके त्याग के भार से इस तरह दबा था कि उसके प्रत्येक प्रश्न पर हाँ के अतिरिक्त न तो कभी निकल ही नहीं सकता। दम्पति ने हँसते-हँसते बंसरीं को विदा किया।

और बंसरी जब अपनी कोठो पर आई, तो एक मुद्दत बाद उससे विपिन मिलने आया।

इस बार बंसरी ने उसके साथ उपेक्षा पूर्वक रूखा व्यवहार नहीं किया और न उसके प्रति घृणा को ही स्थान दिया। वह उसके साथ हँस-हँसकर बातें करती रही। लेकिन विपिन का इतना साहस नहीं हुआ जो वह पुनः ब्याह का प्रस्ताव उसके सामने रखता। वह कोठी से वापस हुआ तो मार्ग में आ सोचने लगा कि कितना तेज है बंसरीं के चेहरे पर। ऐसा लगता है कि किसी कठिन तपस्या के बाद वह तप कर घर लौटी है और अब तपस्विन बन कर ही रहेगी।

और था भी कुछ ऐसा ही; क्योंकि बंसरी अब पहले वाली बंसरी नहीं रह गयी थी। वह बिल्कुल बदल गयी थी। उसके कार्य-कलापों और लक्षणों को देख कर यह प्रतीत होता है कि उसे अब दुनिया की किसी भी वस्तु से कोई भी मतलब नहीं है। यह सब स्पस्ट

इस तरह था कि वह अब न तो नियमित रूप से दिन में दो बार प्रेस जाती थी और न ज्वैलरी की दूकान पर। कभी-कभी भूले भटके पहुंच गई तो पहुँच गई, वरना अब वह कोठी के बाहर ही नहीं निकलती थी। दूकान का बड़ा मुनीम और प्रेस का मैनेजर दोनों कोठी पर ही आकर हिसाब दे जाते थे और आवश्यक पत्रों पर हस्ताक्षर करा ले जाते। वह आँखे बन्द करके क़लम दौड़ा देती। तब मुनीम और मैनेजर उसकी ओर देख कर दंग रह जाते। एकान्त वासिनी वह पहले ही थी; लेकिन अब पिंजड़े की चिड़िया बन गई थी। आश्चर्य की बात तो यह थीं कि वह अकेले में अत्यधिक प्रसन्न दिखलाई देती। पता नहीं कौन से आत्म सन्तोष की अनुभूति मिल गई थी उसे, जो उसके लिये परमानन्द का विषय बनी हुई थी!

बंसरी अब बहुत कम सोचती थी। कई दिनों के मनो-मंथन के बाद उसने यह निष्कर्ष निकाला था कि यदि वह अपना कल्याण चाहती है तो वैभव की ओर से मुख मोड़ ले; क्योंकि वैभव अब उसे काटने दौड़ता था। उसके अतिरिक्त विलास का विकृत रूप वह देख ही चुकी थीं। उसे भय लगा। वह वैभव से विरक्ति पाने के लिये व्यग्र हो उठी और विलास को दूर से ही नमस्कार कर दिया। वह सोचने लगी कि मैं मानवी हूँ और मनुष्य क्या है वह सरलता और सादगी में विद्यमान है। वैभव मनुष्य को अन्धा बना देताहै। विलास उसे अपंग कर एसी स्थिति में ला खड़ा कर देता है जहाँ पर मनुष्य केवल एक निरर्थक माँस-पिंड ही रह जाता है। अपने अस्तित्व को पहचान कर मर्यादा का पालन करना प्रत्येक के वश की बात नहीं। मैंने संसार को सर्वथा मिथ्या पाया। अब मेरी आँखे खुल गई हैं। मैं सत्य की भूखी हूँ, शान्ति की इच्छुक और सन्तोष की प्यासी। अपने अतृप्त मन को तृप्त करने के लिये मुझे लौकिक मायाजाल की ओर से मुख मोड़ना हीं होगा। मैं केशव (अनन्त का पुत्र) को अपनी सम्पूर्ण

जायदाद और धन सम्पदा का दान-पत्र लिख दूँगी फिर निश्चिन्त होकर सृष्टि की गोद में कहीं भी खो जाऊँगी।

इस प्रकार बंसरी ने इन्सानियत के असली रूप को पहचान लिया था। तभी तो वैभव और विलास की ओर से आँखे फेर मनुष्यता की मंजिल पर चल पड़ी थी।

ऐसी थी बंसरी और संसार था एक दम कठोर सख्त पत्थर जैसा।

———

३१

अपने निश्चयानुसार बंसरी ने केशव के नाम अपनी सम्पूर्ण जायदाद और सम्पत्ति आदि का दान पत्र लिख दिया। फिर उसने निश्चय किया कि अब आज ही रात को जब महाराजिन बिट्टो और मंगू नींद में खो रहे होंगे, मैं यह कोठी सदा-सर्वदा के लिये छोड़ दूँगी। मैंने जीवन में एक अनमोल मोती पाया था। किन्तु दुर्भाग्य! वह पराया निकला। जब आशा ही टूट जाय तो निराश होकर समाई कर लेने के सिवा मनुष्य और कर ही क्या सकता है?

सहसा बंसरी किसी अन्तर-वेदना से कराह उठी। उसने सोचा, नहीं मैं सबसे मिलकर ही जाऊँगी। यही भय तो है सामने कि सब लोग मुझे विरक्त होकर कहीं नहीं जाने देंगे। लेकिन भला आज तक जाने वाले को कौन रोक पाया है? दान-पत्र की रजिस्ट्री कराने के लिये केशव का यहाँ होना आवश्यक है। मैं आज ही अनन्त को तार दे दूँगी कि वह रेशम और बच्चों सहित लखनऊ चला आये। एक अवश्यक काम है। तब मैं इस देवता स्वरूप पुरुष अनन्त का अन्तिम दर्शन प्राप्त कर बाहर निकल पड़ूँगी। कुछ भी हो मैं अपना यह लोभ संवरण नहीं कर सकती।

दिन में दान-पत्र लिखा गया था और रात को तार दे दिया गया। जिससे प्रातः होते ही रेशम और बच्चों के साथ अनन्त लखनऊ पहुंच गया।

बंसरी बड़ी ही व्यग्रता के साथ उन लोगों की प्रतीक्षा कर

रही थी। आते ही उसने सबको हाथों-हाथ लिया और नाश्ते-पानी से निवृत हो रेशम तथा अनन्त के सामने दान पत्र रखकर बोली—"मैं चाहती हूँ कि इस दान पत्र की रजिस्ट्री आज ही हो जाय, क्यों कि मुझे जाना है।"

"कैसा दान-पत्र ? कहाँ जा रही हो तुम ? कुछ समझ में नहीं आया ?" अनन्त प्रश्न कर विस्मित नेत्रों से उसकी ओर देखने लगे और रेशम भी आश्चर्य चकित हो पूछने लगी—"तुम क्या कह रहीं हो बंसरी बहन ? मैं भी कुछ नहीं समझी।"

उत्तर में बंसरी ने दान-पत्र का कागज रेशम के हाथ में पकड़ा दिया जिसको पढ़कर वह भौंचक्की रह गयी। इसके मुँह से यका-यक निकल गया—"यह तुमने क्या किया बंसरी ?" रेशम की दृष्टि बंसरी के आनन पर थी और हाथ जिसमें दान-पत्र था वह पति की ओर बढ़ गया था।

अनन्त ने दान-पत्र पढ़ा और फिर ताज्जुब से आँखे फाड़ता हुआ बंसरीं की ओर देखकर बोला—"क्या यह तुम्हारे लिये उचित है ?"

"मुझे अनन्त जो कुछ अच्छा लगा वह मैंने किया। दुनिया अपने मन का करती है तो क्या मैं दुनिया से बाहर हूँ ? चलो, विलम्ब न करो। रजिस्ट्री आज ही हो जानी चाहिये।" इतना कह कर बंसरी वहाँ से जाने लगी तो अनन्त उसे रोकता हुआ बोला—"लेकिन बंसरी यह सब सम्भव कैसे हो सकता है ?"

"यह मैं नहीं बता सकती। तुमसे करबद्ध प्रार्थना है कि यदि मुझको सुखी देखना चाहते हो, तो मेरे किसी भी कार्य में बाधा न डालो।" यह कहने के साथ बंसरी चल दी; क्योंकि अधिक पूछने पछोरने का मौका वह अनन्त को नहीं देना चाहती थीं।

अनन्त वहीं बैठा रहा और रेशम बंसरी के पीछे भागी। वह उसके कमरे में जाकर रूकीं और फिर उसके दोनों कन्धे पकड़ कुर्सी पर बैठती हुई घबराहट भरे स्वर में बोलीं—"ऐसा न करो बंसरी, जिन्दगी बहुत लम्बी है। तुमने अपने लिये तो कुछ भी नहीं रखा। आजीवन कुमारी रह कर तुम उस पापी संसार कीं कुटिल दृष्टि से वहाँ तक अपनी रक्षा करोगी। आखिर तुम्हें सहारा ढूँढना हो पड़ेगा। ऐसा पागल पन न करो बहन।"

बंसरी मुस्करा कर बोल उठी—"मैं इन सब बातों को खूब सोच चुकी हूँ। रह गई यह बात कि मैंने अपने लिये कुछ नहीं रखा सो मैंने तुमको और तुम्हारे परिवार की इतनी बड़ी थाथी पाली है कि उसका मूल्य कुबेर की निधि भीं नहीं चुका सकतीं।

रेशम रोने लगी। तब तक अनन्त भी उसके पीछे आकर खड़ा हो गया। देर तक तीनों प्राणियों में तर्क-वितर्क चलता रहा, लेकिन

बंसरी अपने निश्चय पर अटल रही' हाँ रेशम और अनन्त के अधिक पीछे पड़ने पर उसने यह कह कर अपनी जान छुड़ाली कि जब मुझे खर्चे की आवश्यकता होगी तो थोड़ा-बहुत आवश्यकतानुसार ले लिया करूँगी। इसके अतिरिक्त जब देशाटन से मन खूब भर जायेगा तब मेरा विश्राम स्थान यह कोठी होगी और जहाँ तुम लोगों का बसेरा होगा, वहाँ अपना। देश एक विचित्र स्थायी प्रदर्शनी है जिसका हर स्थल एक विचित्रता लिये है। मैं तीथिटन और देशाटन में ही अपने को खो देना चाहती हूं।

इसके बाद बंसरी ने किसी की एक न सुनी और विवश होकर सबको कचहरी जाना पड़ा।

दान-पत्र की रजिस्ट्री हो गयी थी और कोठी ही में क्या सारे मोहल्ले में चख-चख मच गई थी कि बंसरी अनन्त के लड़के को दान-पत्र लिख दिया और अब वह तीर्थ यात्रा पर जा रही है उसके बाद पता नहीं लौटे या न लौटे ?

महाराजिन ने यह सुना तो वह फफक-फफक कर रोने लगी और बंसरी को अपने अंक में भर कर रो-रो कहने लगी—"यह तुमने क्या किया बिटिया रानी। तुम अपना सर्वस्व किसी को दे देती मुझे तनिक भी दुख नहीं होता। तुम ब्याह नहीं करोगी आखिर अकेले जिन्दगी कैसे पार होगी ? तुममें वैराग्य कहाँ से आ गया ? हाँ, तबियत ऊबी हो तो कुछ दिन चलकर घूम फिर आओ। मैं भी साथ चलूँगी।"

बंसरी के भी आँसू आ गये। वह उसे समझाने लगी; लेकिन महाराजिन पर उसकी बातों का तनिक भी असर नहीं हुआ। वह अपनी ही कहती रही।

ग्रौर इतने में ग्रा गया मंगू ग्राँखों में ग्राँसू की बरसात लिये उसकी ग्राँखों से झर-झर ग्राँसू झरने लगे ग्रौर वह कहने लगा—"मुझे बूढ़े को किसके सहारे छोड़े जा रही हो बन्सू रानी ? समझ में नहीं ग्राता कि होनहार क्या है ? जहाँ तुम जाग्रोगी साथ मैं भी जाऊँगा। मेरे रहते तुम ग्रकेले नहीं जा सकती। दुनिया के रास्ते बहुत चक्कर दार हैं ग्रौर मैं उन चक्करों को जानती हूं। मैं तुम्हें ग्रकेले नहीं जाने दूगा; साथ ही चलूँगा।

बंसरी किस किस को समझाती। वह हैरान हो उठी। मंगू ग्रौर महाराजिन ने उसे गोद में खिलाया था। ग्रतः वह उन्हें माँ-बाप के तुल्य समझती थी। वह इन सबसे जब बातें करते-करते ऊब गई तो चुपचाप जा एक कमरे में ग्रन्दर से कुण्डी बन्द कर लेट रही, लेकिन वह ग्रधिक देर तक उसमें भी न टिकने पायी क्योंकि दूकान का बड़ा मुनीम सदल उससे मिलने ग्राया था। बंसरी उसके हाथों में भी खेली थी। वह उसकी बड़ी इज्जत करती थी। विवश होकर उसे कुण्डी खोलनी पड़ी। मुनीम रोने लगा ग्रौर उसको समझाने लगा। प्रेस का कर्मचारी वर्ग भी ग्रा गया था। रात को बारह बजे तक यह क्रम चलता रहा ग्रौर रेशम ग्रनन्त तथा बच्चों के साथ बंसरी प्रातः की ट्रेन से कानपुर पहुँच गई। उसके साथ महाराजिन बिट्टो ग्रौर बूढ़ा मंगू भी था।

———

३२

कानपुर आकर अनन्त ने बंसरी को बहुत समझाया। लेकिन वह अपने निश्चय से तनिक भी टस से मस नहीं हुई। वह सारी बातों के बाद अन्त में अनन्त से बोली—"जिस संसार का मूल्य मैं जान चुकी हूँ, उसी के मूल्यांकन के लिये मुझे विवश करते हो, यह नही होगा; शायद तुम नहीं जानते कि स्त्री के सामने दो प्रश्न होते हैं एक में वह विध्वंस करती है और दूसरे में निर्माण। मैं निर्माण चाहती हूं। तुम केशव के संरक्षक हो। मेरा पीछा छोड़ो। मेरी लालसा पूरी हो गई। जीवन में तुम जैसा सच्चा मित्र मिल गया, बस यही मेरी लालसा थी। अब विदा चाहती हूँ।"

अनन्त के आंसू बहने लगे और बंसरी भी छल-छल नीर बहाने लगी। ठीक इसी समय विपिन आकर इन दोनों के मध्य खड़ा हो गया। दोनों चौंक कर उसकी ओर देखने लगे। और वह बंसरी की ओर उन्मुख हो आर्द्र कण्ठ से कहने लगा—"मुझे क्षमा कर दो बंसरी। मैंने अकारण ही तुमको इतना दुख दिया। मुझे नही मालूम था कि तुममें इतना वड़ा त्याग है; तुम जीवन की पुतलीं हो और मेरी धर्म-वहन। उस नाते मैं तुमसे अनुरोध नहीं करता भीख मांगता हू कि उतनी विरक्ति अच्छी नहीं। तुम्हें किसी सुयोग्य पात्र के साथ विवाह के पवित्र बन्धन में बँधना ही होगा।"

इस पर छूटते ही बंसरी बोल उठी—"यह नहीं हो सकता विपिन बाबू। मै निश्चय बार-बार नहीं करती। मुझे क्षमा करो। में इस विषय में बहुत कुछ सोच चुकी हूं और तभी यह कदम उठाया है।"

"लेकिन बंसरी··· ---- ···।"

विपिन की बात पूरी भी न हो पायी थी कि बंसरी वहां से चली गयी। विपिन उसकी ओर देखता सा रह गया।

× × × ×

बंसरी अपनी यात्रा के लिये पूर्णतया प्रस्तुत थी। रेशम अनन्त और विपिन उसे समझा–समझा कर हार गये कि वह मत ही लखनऊ में रहे या कानपुर में और यदि जी ऊबा हो तो देशान्तर कर आये' लेकिन एक दम सब की ओर से मुँह न मोड़े। किन्तु बंसरी पर किसी की भी बातों का प्रभाव न पड़ा। वह अपने सम्मुख किसी की नहीं चलने देती थी। ऐसा लगता था कि बहुत दिनों बाद वह कैद से मुक्त हो रही थी। इसीलिये उसे बाहर जाने की धुन सवार थी।

अन्य सब लोगों को तो बंसरी ने जैसे-तैसे उल्टा सीधा समझाकर अपनी जिद रख ली थी, लेकिन महराजिन और मंगू को वह किसी तरह भी न समझा पायी। चित्रकूट के लिये वह प्रस्थान कर रही थी और उसके सहयात्री थे केवल दो व्यक्ति महराचिन और मंगू। बंसरी को तनिक भो मोह नहीं था दुनिया से उसकी झूठी दुनिया दारी से। जिस समय वह ट्रेन पर सवार हुई उस समय रेलवे-प्लेट-फार्म पर प्रेस के कर्मचारी, ज्वेलरी की दूकान के भृत्य, इसके अतिरिक्त विपिन, रेशम और अनन्त तथा कई प्रमुख नागरिक सभी एक साथ उसे विदाई देने आए थे।

ट्रेन चल पड़ी। लोगों के रुमाल हिल रहे थे और उनकी आंखों से आसू झांक रहे थे, लेकिन बंसरी तनिक भी दुखी नहीं

थी। उसने सन्तोष की सांस ली और हिलते हुए रुमालों को देखा। अनन्त का चित्र अब स्पष्ट नहीं दिखाई दे रहा था, क्योंकि ट्रेन दूर निकल आयी थी।

बंसरी मुँह घुमाकर अब धरती और आकाश को निहार रही थी। ट्रेन चली जा रही थी और अब पता नहीं वह क्या सोच रही थी।

———